



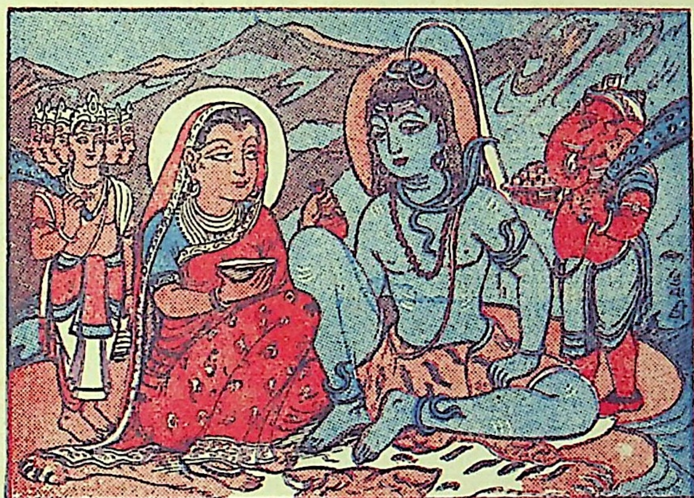
मिलने का पता:

१. विजयेश्वर ज्योतिष कार्यालय पञ्चतीर्थी (जम्मू)

२. नन्दलाल एण्ड सनज़ पुस्तक विक्रेता, जम्मू।

शिवमहिम्नस्तोत्रम्

भाषाटीका-सहितम्



टीकाकार—पं० गोमतीप्रसाद मिश्र,

व्याकरण-पोस्टाचार्य, न्याय-साहित्यशास्त्री

प्रकाशक

भार्गव बुकडिपो, चौक, वाराणसी

प्रधान वितरक—

श्री गंगा पुस्तकालय, गायघाट, वाराणसी

मूल्य २५ पैसा

श्री गणेशाय नमः

अथ शिवमहिम्नस्तोत्रम्

पुष्पदन्त उवाच

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी-
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर ! निरपवादः परिकरः ॥१॥

हे हर ! (आप सब दुःखों को हरण करते हैं अतः हर हैं) अर्थात् हम संकटग्रस्तों के संकट हटाने में आपको दूसरा व्यापार नहीं करना होगा, आपका नाम ही हर है। हे शम्भो ! आपकी महिमा की अन्तिम सीमा (अर्थात् आप इतने बड़े हैं, यह स्वरूप है, यह महिमा है आदि) को न जाननेवाला जो स्तुति करता है, वह स्तुति यदि उचित (उत्तम) नहीं है तो ब्रह्मा आदि सर्वज्ञों से की गयी स्तुतियाँ भी आपके योग्य नहीं हैं। (क्योंकि आपके परिमाण नहीं हैं अतः वे सर्वज्ञ होते हुए भी आपके ज्ञान में अधूरे ही हैं) इसके वाद वात यह है कि जैसे चिड़ियाँ अथाह आकाश में अपनी शक्ति के अनुसार उड़ती हैं, उसी तरह अपनी बुद्धि के अनुसार कोई भी भक्त आपका स्तुतिगान करता हुआ हास्य का पात्र नहीं हो सकता। क्योंकि

सा वाग्यया तस्य गुणान् गृणीते करौ च तत्कर्मकरौ मनश्च।
जिह्वासती दार्दरिकेव सूत ! न चोपगायत्युरुगायगाथाः॥

वही वाणी है, जिससे भगवान् का गुणगान करें। जो हाथ भगवान

का काम करते हैं तथा जो मन उनका मनन करते हैं वही श्लाघ्य हैं। जिस जीभ ने भगवान् का गुणगान नहीं किया, वह मेढक की जीभ के सरीखे हैं। अतः हमारा भी यह आरम्भ इस स्तोत्र में निन्दायोग्य नहीं है ॥ १ ॥

स्तुति के विषय में अपना तथा ब्रह्मा आदि का 'साम्य' युक्ति पूर्वक सिद्ध कर, 'भगवन्! आप स्तुति से जानने योग्य नहीं हैं' इस अभिप्राय से पुनः स्तुति करते हैं:—

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि।
स कस्यस्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्ववर्चीनेपतति न मनः कस्य न वचः॥२॥

'हे हर!' यह सम्बोधन प्रथम श्लोक का यहाँ भी सम्बन्ध रखता है।

हे हर! आपकी सगुण तथा निर्गुण महिमा वाणी एवं मन का विषय नहीं है। वेद भी कहता है कि मन सहित वाणी आदि सभी उस परमात्मा को न पाकर लौट आते हैं ('यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह') जिस महिमा का वर्णन वेद भी चकित-सा होकर करता है (अतद्व्यावृत्या) अर्थात् श्रुति (वेद) सगुण निर्गुण दोनों का वर्णन करते हुए चकित हो जाती है। जैसे सगुण का जगत् से अभेद तथा निर्गुण का स्वप्रकाश वर्णन आदि। अतः ऐसी उस महिमा की स्तुति कौन कर सकता है? कोई नहीं। क्योंकि सगुण में कितने गुण हैं तथा निर्गुण में कैसे जाने जा सकते हैं यह जानना कठिन है। परन्तु नई भव्य वस्तु के लिए किसका मन तथा वचन नहीं खिंच जाता है। इसलिए आपके महिमास्तोत्र में मैं भी उद्यत हूँ ॥ २ ॥

अब शंका इस बात की होती है कि प्रसन्नता किसी एक अपूर्व वस्तु के प्राप्त होने पर ही होती है। और भगवान् सर्वज्ञ तथा नित्य हैं तो यह स्तुति उनकी अपूर्व वस्तु न होने के कारण निष्फल होगी। इस शंका को दूर करते हुए स्तुति की सफलता बताते हैं :—

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन्किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम्।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथन! बुद्धिर्व्यवसिता॥३॥

हे ब्रह्मन्! हे विभो! बृहस्पति आदि से की गयी स्तुति क्या आपके चमत्कार का कारण हो सकती है? (अर्थात् नहीं) क्योंकि बिना परिश्रम के ही श्रीमान् के निःश्वास द्वारा निकली हुई, एवं सब अलंकारों से युक्त, मधु के समान मधुर तथा उत्तम अमृतसी वह वेदवाणी अत्यन्त स्वादु है। तात्पर्य यह है, कि यदि बृहस्पति आदि की स्तुति में कोई विशेषता नहीं है तो हमारी क्या गणना! परन्तु हे पुरमथन! त्रिपुरासुर के मारनेवाले प्रभो! आपके गुणगान से जो पुण्य होगा उससे मेरी बुद्धि निर्मल होगी। इस अभिप्राय से आपकी स्तुति में मेरी बुद्धि उद्यत हुई है॥ ३॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीम्
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः॥४॥

हे वरद (वाञ्छित वस्तु के देनेवाले)! जगत् की सृष्टि, रक्षा,

प्रलय करनेवाला, तथा तीनों (ऋग, यजु, साम) वेदों से गाया गया एवं तीन (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) रूपों में रहनेवाला जो आपका ऐश्वर्य है उसको नष्ट करने के लिए कुछ मूर्ख व्याक्रोशी (आक्षेप-पूर्वक ऊँचे स्वर से विरुद्ध भाषण) करते हैं, जो कि निन्दा मनोहर नहीं होती हुई भी भाग्यहीनों को मनोहर सी लगती है ॥ ४ ॥

विरोधी दल किन-किन शंकाओं को करता है। उनका उत्तर देते हुए स्तुति करते हैं :—

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनम्
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥५॥

हे वरद ! आप तर्क करने के योग्य नहीं हैं। आपके विषय में संसार को मोह में डालनेवाला कुतर्क बहुत से दुष्टबुद्धियों (मूर्खों) को वाचाल (बहुत बोलनेवाला) बना रहा है। कुतर्क यह है:—कि वह धाता (परमेश्वर) त्रिभुवन की सृष्टि करता है, यह सिद्धान्त है। तो जैसे कुम्हार घड़ा बनाते समय चाक चलाना आदि कई एक व्यापार करता है, वैसे ही ईश्वर भी यदि संसार को बनाता है तो उसकी चेष्टा क्या है ? तथा किस शरीर से, किन साधनों से, कौन-से आधार पर, एवं किस उपादान कारण से रचता है। यदि उसमें ये सभी व्यापार हैं तो वह ईश्वर कैसे ? तथा यदि सभी व्यापार नहीं हैं तो जगत् का बनानेवाला कैसे ? इत्यादि। उ०—जैसे आँख से दूसरी चीज देखी जा सकती है, न कि आँख अपने रूप को देखती है। उसी तरह सब जगत् एवं तर्क के अधिष्ठान आप ही हैं। अतः किसी भी तर्क से प्रत्यक्ष नहीं किये जा सकते। वेद भी कहता है—(ईश्वरे

तर्काप्रतिष्ठानात्) ईश्वर में तर्क नहीं लगता। अतः यह सिद्ध है, कि दुष्ट लोग आप में तर्क करके संसार को मोह में डाल देते हैं॥ ५॥

इस प्रकार विरोधी तर्क का खंडन कर उचित तर्क का समर्थन करते हैं :—

अजन्मानोलोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर! संशेरत इमे॥६॥

हे अमरवर! (सब देवों में श्रेष्ठ) क्या ये भू (पृथ्वी) आदि लोक अवयव (खंड) वाले होते हुए भी जन्मरहित हैं? अर्थात् नहीं। तथा क्या पृथ्वी आदि की सृष्टिक्रिया विना किसी अधिष्ठाता (कर्ता) के हो सकती है? अर्थात् नहीं। और ईश्वर से भिन्न यदि कोई पुरुष इसका कर्ता है, तो उसके पास रचना की क्या सामग्री है? क्योंकि जीव तो अपने शरीर की रचनाओं को ही नहीं जानता, चौदहो भुवन का तो दूर है। इस प्रकार आप सब प्रमाण द्वारा सिद्ध हैं। इसलिए वे महान् मूर्ख हैं जो आपके विषय में सन्देह करते हैं॥ ६॥

इस प्रकार भगवत्-विमुखों का खण्डन कर सम्पूर्ण शास्त्रों का तात्पर्य साक्षात् या परम्परा से ईश्वर में ही है। ऐसी स्तुति कर रहे हैं :—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

हे अमरवर ! जैसे सभी नदियाँ सीधे या एक दूसरी नदी से सम्बन्ध करके समुद्र में ही जाती हैं वैसे ही त्रयी (वेद आदि अठारह विद्या- पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः । वेदाःस्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश । ये चौदह, तथा आयुर्वेद धनुर्वेद गांधर्ववेद अर्थशास्त्र ये चार सांख्य, योग, शैवमत, वैष्णवमत आदि अनेक मत तथा आपको प्राप्त करने के अनेक मार्ग हैं। सभी भिन्न-भिन्न मार्ग ग्रहण कर लेते हैं। परन्तु साक्षात् या परम्परया आपको प्राप्त करना ही सबका ध्येय है। जैसे समुद्र में गङ्गा सीधे जाती है, रावती आदि सरयू आदि से मिलकर जाती हैं, वैसे ही वेदान्ती सीधे जाते हैं। कुछ मतवाले परम्परया जाते हैं। परन्तु सबका ध्येय आपका चरण ही है ॥ ७ ॥

उपर्युक्त साधनों से शंकाओं को दूर कर प्रसिद्ध नवीन रूप में वर्तमान शिव की स्तुति करते हैं :—

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद ! तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रूप्रणिहितां
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति॥८॥

हे वरद (वर देनेवाले) ! यद्यपि आप परिपूर्ण परमेश्वर हैं, तथापि महोक्ष (बूढ़ा बैल), खट्वाङ्ग (खाट का अवयव शस्त्र विशेष), परशु (टङ्क-कुठार), अजिन (चर्म), भस्म, फणि (सर्प), कपाल (अनेक मनुष्यों

की खोपड़ी) ये आपके तन्त्रोपकरण (कुटुम्ब धारण) के साधन हैं। यह संशय करें, कि जो खुद ऐसा दरिद्र है, वह क्या दूसरे को दे सकता है। तो ऐसा नहीं, प्रभो ! आपके भ्रूविक्षेप मात्र से दी गयी भिन्न-भिन्न ऋद्धियों को देवता लोग धारण करते हैं। तो यह कहें कि स्वयं उसका उपभोग क्यों नहीं करते ? उत्तर-अन्य सभी विषय-वासना मोहित हैं। परन्तु स्व-प्रकाश आनन्दस्वरूप ब्रह्म को विषय का भ्रमजाल नहीं लुभा सकता। अर्थात् आप माया से परे हैं आपको किसी वस्तु की आवश्यकता ही नहीं है ॥ ८ ॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन ! तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता॥९॥

हे पुरमथन ! (त्रिपुरासुर के नाश करनेवाले) कोई (सांख्यपातञ्जलमतानुयायी (इस जगत् को ध्रुव (नित्य) मानता है कोई, (बौद्ध) अध्रुव (अनित्य), तथा कोई (तार्किक) नित्य अनित्य दोनों मानता है। ऐसी हालत में हे प्रभो ! जोकि भिन्न-भिन्न प्रकार से भिन्न-भिन्न रूप जगत् को मानते हुए आपकी स्तुति भी भिन्न-भिन्न किये हैं। उनसे चमत्कार को प्राप्त मैं स्तुति करने में लज्जित नहीं हो रहा हूँ कि लोग कहेंगे कि यह स्तुति करना नहीं जानता किन्तु हमारी वाचालता ही हमें इस स्तुति में निर्लज्ज बना रही है और स्तुति करने को उद्यत कर रही है ॥ ९ ॥

तवैश्वर्यं यत्नाद् यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः ।
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।

ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश ! यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्नफलति ॥ १० ॥

हे गिरीश ! हे शम्भो ! आपकी सेवा क्या नहीं दे सकती ? अर्थात् सभी कुछ दे सकती है। आपकी सेवा से आपका साक्षात्कार तक हो सकता है। हे भगवन्, आपकी तेजःपुञ्जमयी मूर्ति के ऐश्वर्य का माप करने के लिए यत्नपूर्वक ऊपर ब्रह्मा, नीचे-विष्णु गये, परन्तु थाह नहीं पाये। हम सरीखे की क्या बात है। बाद में जब भक्ति-श्रद्धा से आपकी स्तुति किये, तो आप स्वयं स्थिर हो गये अर्थात् स्तुति से जब आप प्रसन्न हुए, तब आपका थाह लगा। इससे यह निश्चय प्रतीत होता है, कि आपकी स्तुति अवश्य फलद होती है ॥ १० ॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरम्
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरः पद्म-श्रेणी-रचित-चरणाम्भोरुह-बलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर ! विस्फूर्जितमिदम्

हे त्रिपुरहर ! रावण ने जो आपके चरणकमलों में अपने नौ मस्तक-रूप कमलपुष्प की श्रेणी (पंक्ति) को बलि (उपहार) में चढ़ा दिया था, उसके उसी निश्चल भक्ति का यह प्रभाव है कि तीनों लोक में उसके वैर का कारण भी कोई नहीं रह सका। अर्थात् अपने पराक्रम से इन्द्र, कुबेर आदि को भी जीत लिया था। और रण (युद्ध) के लिए बराबर खुजला जानेवाली २० बीस भुजाओं को धारण किया था। अर्थात् कोई उससे लड़नेवाला नहीं था। अतः उसकी बाहें खाली रहने के कारण खुजलाती-सी रहती थीं। यह सभी आपकी भक्ति का ही फल है ॥ ११ ॥

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनम्
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलितांगुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठात्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यतिखलः१२

हे त्रिपुरहर ! आपकी सेवा से ही प्राप्त बलवाले, अपनी भुजाओं का आपके निवासस्थान कैलास में बलात्कार से पराक्रम दिखलानेवाले रावण को पाताल में भी शरण नहीं मिली । क्योंकि आपने धीरे से अपने अँगूठे से दबा दिया । अतः वह इतना नीचे जाने लगा कि पाताल में भी शरण नहीं रही । शंका यह होती है कि उन्हीं से बल प्राप्त कर फिर उन्हींके साथ ऐसा क्यों किया ? उ०–दुष्ट मनुष्य कुछ बढ़ जाने पर अपने को तथा अपनी वृद्धि के कारणों को भी नहीं समझ पाता ।

यहाँ ऐसी कथा है कि किसी समय रावण अपने बाहु बल के घमंड से कैलास पर्वत को लंका लाने के लिए गया और हिलाना शुरू किया कि श्रीपार्वती ने बताया, तब श्रीशिवजी ने धीरे से अपना अँगूठा दबाया । वह इतना नीचे चला कि पाताल में भी शरण नहीं मिली ॥ १२ ॥

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद ! परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयोर्न
कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः १३

हे वरद ! (वर देनेवाले) सेवक के समान तीनों भुवन हैं जिसके ऐसे बाणासुर ने सुत्रामा (इन्द्र) की बढ़ी-चढ़ी सम्पत्ति को भी नीचा कर दिया । हे प्रभो ! इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । क्योंकि वह आपका प्रधान भक्त था । मैं तो यह कहता हूँ कि आपके चरणों में किया हुआ नमस्कार किसकी उन्नति के लिए नहीं होता । अर्थात् सभी की उन्नति का कारण होता है ॥ १३ ॥

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभंगव्यसनिनः १४

हे त्रिनयन ! (तीन नेत्रवाले) समुद्र-मथन से निकले कालकूट नामक महाविष का संहार (पान) करनेवाला कोई नहीं था क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी डरते थे । परन्तु सम्पूर्ण ब्रह्मांड के नाश की आशंका से चकित इन्द्र, कुबेर आदि देवगण तथा सभी राक्षस-गण पर तथा समस्त ब्रह्मांड पर कृपा कर जो आपने उस महाविष का पान किया है, उससे गले में जो कल्माष (कालापन) हो गया है वह क्या आपकी शोभा को नहीं बढ़ाता है ? किन्तु बढ़ाता ही है । हे भगवन् ! संसार के भय को दूर करने का जिसका व्यसन है उसके यहाँ विकार भी प्रशंसा के योग्य हो जाता है ॥ १४ ॥

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।

स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरःस्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यःपरिभवः१५

हे ईश ! (हे सर्वसमर्थ !) जिस कामदेव के बाणों ने देवता, असुर, मनुष्य आदि जितने जगत् में हैं—सबको जीत लिया, कहीं भी निष्फल नहीं हुए, ऐसा अस्त्रवाला कामदेव घमण्ड के मारे अन्धा होकर आपको भी अन्य देवताओं के सरीखे समझकर गया। परन्तु फल क्या हुआ कि वह स्मरण करने योग्य हो गया (अर्थात् आपने उसे भस्म करके नाममात्र ही शेष कर दिया) क्योंकि जितेन्द्रियों का अनादर कभी भी कल्याणकारी नहीं होता, तो आप तो सर्वशक्तिमान् हैं, और जो सबसे बड़े घमण्डी तथा दुष्ट होते हैं उनको आप ही दुरुस्त करते हैं ॥१५॥

मही पादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

हे ईश ! आप यद्यपि जगत् की रक्षा के लिए नाचते हैं, तथापि नृत्यकाल में पृथ्वी संकट में पड़ जाती है, कि कहीं नीचे न चली जाऊँ। आपकी घूमती हुई मुद्गर सरीखी भुजाओं की चोटों से तारागण पीड़ित हो जाते हैं तथा खुली हुई जटाओं से बराबर पीटा गया स्वर्गलोक का तट-प्रदेश दुर्दशा में पड़ जाता है।

शंकाः—श्री महादेवजी ऐसा हानिकर कार्य क्यों करते हैं ?

उ०—अहो ! (प्रभुता वामैव) उलटी ही होती है । अर्थात् सम्पत्तिशाली एक साधारण मनुष्य से भी कुछ अच्छा कार्य करते हुए कुछ उपद्रव हो ही जाता है । तो यदि संसार के रक्षार्थ नाच करते समय आपसे कुछ हो जाता है, तो क्या हुआ ?

ऐसी कथा है कि किसी राक्षस ने महादेवजी को प्रसन्न करके यह वरदान प्राप्त किया था कि शाम को हमें अथाह बल हो जाय तो जब वह अपने बल से मतवाला होकर संसार के नाश के लिए तैयार होता है, तब श्री शंकरजी अपने नाच में उसे फँसा देते हैं ॥ १६ ॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद्द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि—
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः ॥१७॥

ईश ! आकाश में व्याप्त तथा तारागणों की चमक से चमकता हुआ फेनवाला महान् वह आकाशगंगा का प्रवाह आपके शिर में छोटी-सी बूँद जैसा दिखाई पड़ रहा है । जिस प्रवाह ने ही इस जगत् के सातों समुद्रों को भरा है, जिससे यह पृथ्वी समुद्र की परिधिवाली कही जाती है, अर्थात् जिससे सात समुद्र भरे गये ऐसी आकाशगंगा (भागीरथी, भोगवती नाम की) आपकी जटा में ऐसी सिमिट गयी, कि एक छोटी-सी बूँद जैसी बन गयी । इसीसे आपकी दिव्य मूर्ति का महत्त्व सिद्ध हो रहा है । अधिक कहना क्या है ॥ १७ ॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथांगे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।

दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः १८

हे ईश ! आपके सामने तृण के समान जो त्रिपुरासुर था उसके जलाने के लिए आपने यह क्या आडम्बर रचा। पृथ्वी को रथ बनाया, ब्रह्मा को सारथि, पर्वतराज मेरु को धनुष, तथा सूर्य-चन्द्रमा को चक्र, तथा श्रीविष्णु भगवान् को बाण बनाया। आपने यह बड़ा ही आडम्बर किया। क्योंकि कोई साधारण जन भी किसी तृण के लिए कुठार नहीं उठाता, आप तो सर्वशक्तिमान् हैं। अथवा हे प्रभो ! सही है पूर्णशक्तिशाली लोग अपने वशवर्त्तियों के साथ क्रीडापूर्वक कुछ करते हुए, परतन्त्र नहीं कहे जाते ॥ १८ ॥

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर ! जागर्ति जगताम् ॥ १९ ॥

हे त्रिपुरहर ! श्रीविष्णु भगवान् ने आपके चरणों में एक हजार कमलों की भेंट चढ़ाते समय एक कमल के कम हो जाने पर (जिसको आपने परीक्षा के लिए छिपा रक्खा था) नियम भङ्ग के डर से अपने नेत्ररूपी कमल को ही उखाड़कर भेंट कर दिया ! हे प्रभो ! इसी उत्कट भक्ति का फल सुदर्शन चक्र है जो कि सारे जगत् की रक्षा के लिए सदा सावधान (गर्जता) रहता है ॥ १९ ॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते।
अतस्त्वां सम्प्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः।२०।

हे भगवन्! जैसे लोक में कोई किसीको कर्ज देता है तो एक ऐसा भी साक्षी बनता है कि कर्जदार के मर जाने आदि किसी कारण पर वही देता है। ऐसे ही हे नाथ! यज्ञ करनेवाले लोग यज्ञों के फल देने में प्रतिभू (साक्षी) आपको देखकर तथा श्रुतियों (वेदों) में श्रद्धा कर कर्मों में कमर बाँधकर तैयार रहते हैं। कारण यह है कि यज्ञादि कर्मकलापों के नष्ट हो जाने पर भी आप फलदाता बराबर जागते ही रहते हैं। यदि यह कहें कि कर्म फल देता ही है, तो प्रभो! भला नष्ट हुआ कर्म चैतन्य पुरुष की आराधना के बिना कहीं फलता है? अर्थात् नहीं फलता है, इससे यह सिद्ध हुआ कि आप ही सभी कर्मों के फल दाता हैं॥ २०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद! सदस्याः सुरगणाः।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः।२१।

हे शरणद! (शरण देनेवाले!) जिस यज्ञ में कर्मकाण्ड-कुशल तथा प्रजापति होने से तथा सम्पूर्ण देहधारियों का स्वामी राजा दक्ष

प्रजापति जैसा यजमान था तथा त्रिकालदर्शी भृगु आदि महर्षिगण ऋत्विज थे एवं ब्रह्मा आदि देवगण जहाँ सदस्य थे, ऐसे सर्वसम्पन्न यज्ञ का भी आपकी अप्रसन्नता के कारण नाश हो गया। आप यद्यपि यज्ञों के स्वर्ग आदि फल देने के व्यसनी हैं, परन्तु अवज्ञा से उन्होंने अपने यज्ञ के नाश का कारण बना दिया। हे प्रभो! यह निश्चय है कि यज्ञ के फल देनेवाले आप में श्रद्धा का न होना यजमान के नाश का कारण हो जाता है ॥ २१ ॥

प्रजानाथं नाथ! प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः २२

हे नाथ! कामुक पिता के व्यभिचार की प्रवृत्ति देखकर धर्म के भय से हरिणीरूप धारण की हुई अपनी पुत्री से व्यभिचार की इच्छा से मृगरूप धारण किये ब्रह्मा के पीछे-पीछे आज भी आपका व्याधरूपी बाण उनके डर जाने पर भी आकाश में भी उनका पीछा नहीं छोड़ता। अर्थात् मृगशिरा नक्षत्र के नाम से ब्रह्मा तथा आर्द्रा नक्षत्र के रूप से उनके पीछे रहनेवाला आपका बाण आज भी आकाश में दिखाई पड़ रहा है।

ऐसी पुराण की कथा है कि अत्यन्त सुन्दरी अपनी कन्या शतरूपा के साथ ब्रह्मा ने बलात्कार, व्यभिचार करना चाहा–तब कन्या डरकर मृगी बन गयी। तब वे मृग रूप धारणकर व्यभिचार करना चाहे उस समय न्यायकर्ता शिवजी का बाण व्याध के रूप से उनके पीछे पड़ा, जो कि आज भी मृगशिरा-आर्द्रा नक्षत्र के रूप में दोनों वर्तमान हैं ॥ २२॥

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमन्हाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन ! पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद ! मुग्धा युवतयः ॥२३॥

हे पुरमथन ! हे यमनिरत ! (यम, नियम, आसन, आदि अष्टाङ्गयोग परायण !) पार्वती के शरीर-सौन्दर्य से परम योगी आपको वश करने की आशा से जिस कामदेव ने बाण उठाया था उस धनुषधारी को तृण के समान जलते हुए देखकर भी पार्वती आधे देह में धारण करने के कारण सब योगियों में श्रेष्ठ आपको स्त्रैण (स्त्री में आसक्त) मानती हैं। अर्थात् सोचती हैं कि यदि शिवजी हमारे में आसक्त न होते तो हमें अपने आधे अङ्ग में नहीं रखते। हे वरद ! (वरों के देनेवाले !) सही है, युवतियाँ स्वभाव से ही मुग्धा (भोली-भाली) होती हैं तथा स्त्रियों का भोलापन एक भूषण है। परन्तु आप तो परम योगी संसार से अलग हैं ॥ २३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर ! पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटी परिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद ! परमं मङ्गलमसि ॥२४॥

हे स्मरहर ! (हे कामदेव के नाश करनेवाले !) श्मशानों में क्रीड़ा करना, भूत-प्रेत-पिशाचों को साथ में रखना, चिता का भस्म शरीर में लेप करना, मनुष्यों के शिर की हजारों हड्डियों की माला पहिनना आदि अमङ्गल चरित्र आपमें हैं, वे आपके पास रहें सही। किन्तु हे वरद !

स्मरण करनेवालों के लिए वही आपका स्वरूप परम मङ्गल का देनेवाला है। अतः आप मङ्गल की कामनावालों से सदा याद करने लायक हैं ॥ २४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमभिधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये-
दधत्यन्तस्तत्त्वंकिमपियमिनस्तत्किलभवान्२५

हे वरद ! मन को वाहरी व्यापारों से रोककर अन्तर्मुखवृत्ति वनाकर विधिपूर्वक वायु को ग्रहण करनेवाले अर्थात् प्राणायाम में लगे हुए, तथा ध्यान से पूर्ण रोम-रोम पुलकित है जिनका, एवं हर्ष के आँसुओं से भरे नेत्रवाले अष्टाङ्गयोग युक्त योगी को अमृतमय तालाब में डुबकी लगाने से जो आनन्द होता है वैसा ही आनन्द अनुभव कर सत्, चित्, आनन्द स्वरूप मन एवं वाणी से परे जिस-जिस किसी तत्त्व (अर्थात् जिसका यह नहीं कहा जा सकता कि यह रूप है—यह है) को अपने में धारण करते हैं, वह हे प्रभो ! आप ही हैं—जिसका वे ध्यान कर परमानन्द को प्राप्त करते हैं ॥ २५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योमत्वमु धरणिरात्मात्वमितिच।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरम्
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वंनभवसि॥२६॥

हे प्रभो ! तूँ सूर्य हो, तूँ चन्द्र हो, तूँ वायु हो, तूँ अग्नि हो, तूँ जल हो, तूँ आकाश हो, तूँ ही पृथ्वी हो, एवं क्षेत्रज्ञ आत्मा भी तूँ ही हो, ऐसा जैसा कि शास्त्रों में आपकी मूर्तियाँ बतायी गई हैं। ऐसा ही परिणतबुद्धि (पके हुए बुद्धि) वाले साप करके आपको मानते हैं। परन्तु हे भगवन् ! मैं नहीं समझता कि इस संसार में कौन ऐसा पदार्थ है जो आप नहीं हैं। अर्थात् सभी पदार्थ आप ही का स्वरूप है। आपसे भिन्न कुछ नहीं है ॥ २६ ॥

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः समस्तं
व्यस्तं त्वां शरणद ! गृणात्योमितिपदम् ॥२७॥

हे शरणद ! (दुःखियों को अभयदान देनेवाले !) ॐ यह पद तीनों वेदों तथा तीनों (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित अथवा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति) वृत्तियों एवं तीनों (भूः भुवः स्वः) लोकों और तीनों देवताओं को अपने स्वरूप में धारण करता हुआ समस्त (समास अर्थात् अ उ म् का कर्मधारयसमास) के रूप से तथा व्यस्त (अलग अलग अकार, उकार, मकार) के रूप से अर्थात् ऋग्वेद, जाग्रदवस्था भूलोक एवं ब्रह्मा ये अकार के अर्थ हैं। यजुर्वेद स्वप्नावस्था, भुवर्लोक तथा विष्णु ये उकार के अर्थ हैं। सामवेद सुषुप्ति अवस्था, स्वर्गलोक हर, ये मकार के अर्थ हैं। यह उपनिषदों में बताया गया है। ऐसा ॐ पद समस्तरूप (अर्थात् एक रूप) तथा व्यस्त रूप (अर्थात् अनेक रूपवाले) विकाररहित आपके तुरीय (चतुर्थ) अखण्ड चैतन्य रूप को सदा गाता है ॥ २७ ॥

भवश्शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम्।
अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मैधाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते॥२८॥

हे शरणद ! हे देव ! भव, शर्व, रुद्र, पशुपति, उग्र, (सहसा सह वर्तते सहमहान्) महादेव और भीम, ईशान आदि आपका जो नामाष्टक है, इसके प्रतिनामों के गुणगान में देवगण तथा श्रुतियाँ (वेद) अपि शब्द से शास्त्र पुराणादि सभी पूर्णरूप से लगे रहते हैं। हे भगवन्! ऐसे प्रभु के योग्य पूजन में अपने को असमर्थ समझ कर मैं उस तेज का मन वाणी एवं शरीर से केवल नमस्कार ही कर रहा हूँ ॥ २८ ॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव ! दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर ! महिष्ठाय च नमः।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन ! यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः॥२९॥

हे प्रियदव ! (निर्जन-वन-विहार-प्रेमी !) अत्यन्त निकटवर्ती एवं अत्यन्त दूरवर्त्ती आपके लिए बार-बार नमस्कार है। हे स्मरहर! (कामदेव के नाश करनेवाले !) अत्यन्त लघु तथा परम महान् आपको बार-बार नमस्कार है। हे त्रिनयन ! (तीन नेत्रवाले !) अति वृद्ध एवं अति युवा आपको बार-बार नमस्कार है तथा हे भगवन् ! यह जगत् है जिसका, जगत् रूप है जो, ऐसे प्रभु को बार-बार नमस्कार है ॥ २९ ॥

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ।३०।

हे भगवन् ! संसार की सृष्टि के लिए रजोगुण प्रधान ब्रह्मा की मूर्ति धारण करनेवाले आपके लिए बार-बार नमस्कार है। जीव मात्र के सुख के लिए सत्वगुण प्रधान विष्णु रूपधारी आपको नमस्कार है। सबके नाश की इच्छा से तमोगुण प्रधान हर-रूप धारण करने वाले आपको बार-बार नमस्कार है। एवं माया से परे तथा तीनों गुणों से रहित आपको बार-बार नमस्कार है। अर्थात् निर्गुण होते हुए भी आवश्यकता पर सगुणरूप धारण करनेवाले आपके लिए बार-बार नमस्कार है ॥ ३० ॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदम्
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद ! चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

हे वरद ! दुर्बल परिणामवाला एवं अत्यन्त क्लेश के वश में रहनेवाला कहाँ हमारा क्षुद्र चित्त, कहाँ आपकी बढ़ी-चढ़ी हरएक गुणों की सीमाओं को लाँघनेवाली ऋद्धियाँ, तो भला स्तुति कैसे करूँ ? ऐसे चकित (मन्द) मुझको मेरी भक्ति चमत्कार युक्त बनाकर आपके चरणों में यह वाक्यरूपी फूलों की माला सेवा में सादर

अर्पित कराई है। अर्थात् हे प्रभो! पूर्वोक्त स्तुति मेरे सामर्थ्य से बाहर रही, परन्तु आपके विषय में जो मेरी भक्ति है उसने दृढ़ बनाकर यह स्तुति करायी है। जैसे 'पुष्प' रस लेनेवाले भौंरे तथा पथिक को अपने गन्ध से सुखी करता है, उसी तरह यह 'स्तुति' भक्त रसिकों को तथा सुननेवाले को यथायोग्य सुख देती हैं॥ ३१॥

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति॥३२॥

हे ईश! (सर्वसमर्थ!) समुद्र रूपी पात्र (दावात) में काले पर्वत के समान कज्जल (स्याही) हो, और सुरतरुवर (कल्पवृक्ष) की शाखा की लेखनी (कलम) हो, तथा सम्पूर्ण पृथ्वी पत्र (कागज) हो, इन सबको लेकर साक्षात् सरस्वती भी निरन्तर लिखा करें तब भी हे प्रभो! आपके गुणों का पार नहीं पा सकती। तो हम सरीखे क्षुद्रजन की क्या बात है। (अर्थात् आप अपरिमितगुणवाले हैं)॥ ३२॥

असुर-सुर-मुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य
सकलगुणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार॥ ३३॥

राक्षस, देवता एवं मुनीन्द्रों से पूजित तथा ललाट में हैं चन्द्रमा जिनके ऐसे तथा जिनके गुणों की महिमा यहाँ एक माला के रूप में

गूँथी गई है, ऐसे निर्गुण ईश्वर के इस सुन्दर स्तोत्र को पुष्पदन्त नामक यक्षराज ने अलघुवृत्तैः (बहुत बड़े परिश्रम से अथवा शिखरिणी आदि छन्दों से) बनाया ॥ ३३ ॥

अहरहरनवेद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान्यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥३४॥

जो शुद्ध हृदयवाला पुरुष परम भक्तिपूर्वक धूर्जटि (महादेव) के इस पवित्र स्तोत्र का प्रतिदिन पाठ करता है वह शिवलोक में रुद्रों के समान होता है, अर्थात् उसकी पूजा होती है, और इस लोक में अत्यन्त धन, आयु, पुत्र एवं यश आदि को प्राप्त करता है। अर्थात् दोनों लोक उसके बन जाते हैं ॥ ३४ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ३५

श्री महादेवजी से बढ़कर कोई देवता नहीं है। महिम्नस्तोत्र से बढ़कर कोई स्तोत्र नहीं है। अघोर मन्त्र से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। अघोर मन्त्र वैदिक मन्त्र है। गुरु से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है ॥ ३५ ॥

दीक्षा दानंतपस्तीर्थंज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्यकलां नार्हन्ति षोडशीम् ३६

दीक्षा (ज्ञान के लिए गुरु से मन्त्र लेना), दान, तप, तीर्थ, ज्ञान

और यज्ञ करना आदि क्रियायें महिम्नस्तोत्र के पाठ की सोलहवीं कला के समान भी नहीं है ॥ ३६ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७॥

कुसुमदशन (पुष्पदन्त) नामक सब गन्धर्वों के राजा, बाल चन्द्रमा को ललाट में धारण करनेवाले देवों के देव (महादेव) के भक्त थे। वह इन्हीं महादेवजी के कारण अपने महत्त्व से गिर गये। पुनः उद्धार के लिए शंकरजी की महिमा का परमदिव्य स्तोत्र बनाया ॥ ३७ ॥

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्व भाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥३८॥

अनुपम (अर्थात् जिसके उपमा की कोई वस्तु है ही नहीं) ऐसा एवं मन को हरनेवाला परम मधुर शिव (कल्याण) स्वरूप यह समाप्तिपर्यन्त ईश्वरवर्णनात्मक पवित्र स्तोत्र गन्धर्वराज से कहा गया ॥ ३८ ॥

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुम्
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३९॥

पुष्पदन्त का बनाया हुआ अमोघ (व्यर्थ नहीं होनेवाला) बड़े-बड़े देवताओं और मुनियों से पूज्य और स्वर्ग (सुख) तथा मोक्ष (आवागमन से छुटकारा) को देने का कारण जो यह स्तोत्र है इसको मनुष्य एकाग्रचित्त हो एवं हाथ जोड़कर यदि पढ़े तो मार्ग में किन्नर-गण द्वारा स्तुति (प्रशंसा) प्राप्त करता हुआ श्रीशिवजी के पास पहुँच जाता है ॥ ३९ ॥

श्री पुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥ ४० ॥

श्री पुष्पदन्त के मुख-कमल से निकले हुए सब पापों के दूर करने-वाले श्री शिव के प्रिय स्तोत्र के कण्ठस्थपाठ तथा एकाग्रचित्त के पाठ से भूतों के नाथ श्रीमहेशजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं (अर्थात् यह स्तोत्र कण्ठ करने से श्री शिवजी बहुत प्रसन्न होते हैं) ॥ ४० ॥

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयताञ्च सदाशिवः ॥४१॥

यह वाणीरूपी पूजा श्री शंकर भगवान् के चरण में सादर समर्पित है। इससे श्री सदाशिव (कल्याणस्वरूप) देवों के ईश मुझ पर प्रसन्न होवें ॥४१॥

तव तत्त्वं न जानामि कीदृशोऽसि महेश्वर !
यादृशोऽसि महादेव तादृशाय नमो नमः ॥४२॥

हे महेश्वर ! आप कैसे हैं ? क्या रूप है ? कितने गुण हैं इत्यादि मैं नहीं जानता। आप जैसे हैं वैसे ही के लिए नमस्कार है ॥४२॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं यः पठेन्नरः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥४३॥

एक काल (प्रातः) अथवा दो काल (प्रातः दोपहर) अथवा तीन काल (प्रातः दोपहर शाम) कभी भी इस स्तोत्र को जो पढ़ता है वह सब पापों से छुटकारा पाकर श्री शिवजी के लोक में पूजा प्राप्त करता है ॥४३॥ श्री शिवार्पणमस्तु ॥

इति श्री गोरखपुर-घुआँटीकरस्थ पं० राजकुमार मिश्रात्मज पं० गोमती-प्रसाद मिश्र व्या० पोस्टाचार्य न्या० सा० शास्त्री प्राप्तपदककृत भाषाटीकासहित शिवमहिम्नस्तोत्रम् समाप्तम् ।

श्रीकागभुशुण्डिगुरु (लोमश) कृतं रुद्राष्टकम्

नमामीशमीशाननिर्वाणरूपम् । विभुं व्यापकं ब्रह्मवेदस्वरूपम् ॥
अजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहम् । चिदाकाशमाकाशवासं भजेऽहम् ॥
निराकारमोङ्कारमूलं तुरीयम् । गिराज्ञानगोतीतमीशं गिरीशम् ॥
करालं महाकालकालं कृपालुम् । गुणागारसंसारपारं नतोऽहम् ॥
तुषाराद्रिसंकाशगौरं गभीरम् । मनोभूतकोटिप्रभाश्रीशरीरम् ॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनीचारुगङ्गा । लसद्भालबालेन्दु कण्ठे भुजङ्गा ॥
चलत्कुण्डलं शुभ्रनेत्रं विशालम् । प्रसन्नाननं नीलकण्ठं दयालुम् ॥
मृगाधीशचर्म्माम्बरं मुण्डमालम् । प्रियं शङ्करं सर्वनाथं भजामि ।
प्रचण्डं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशम् । अखण्डं अजं भानुकोटिप्रकाशम् ।

त्रयः शूलनिर्मूलनं शूलपाणिम् । भजेऽहं भवानीपतिं भावगम्यम् ॥
कलातीतकल्याणकल्पान्तकारी । सदा सज्जनानन्ददाता पुरारी ॥
चिदानन्दसन्दोह मोहापहारी । प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥
न यावद् उमानाथ पादारविन्दम् । भजन्तीह लोके परे वा नराणाम् ॥
न तावत्सुखं शांति सन्तापनाशम् । प्रसीद प्रभो सर्वभूताधिवासम् ॥
न जानामि योगं जपं नैव पूजाम् । नतोऽहं सदा सर्वदा शम्भु तुभ्यम् ॥
जराजन्मदुःखौघतातप्यमानम् । प्रभो पाहि आपन्नमामीश शम्भो ॥
रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये ।
ये पठन्ति नरा भक्त्यातेषां शम्भुः प्रसीदति ॥

श्रीशिवमहिम्नस्तोत्र की कथा

ऐसी कथा है कि कोई गन्धर्वराज किसी राजा के अन्तःपुर उपवन (स्त्रियों के बाग) के फूल प्रति दिन चुराकर ले जाया करता था। कोई उसे देख नहीं पाता था। राजा ने उस पुष्प-चोर का पता लगाने के लिए यह निश्चय किया कि शिवनिर्माल्य (मूर्ति से उतरे फूलमाला आदि का नाम निर्माल्य है) के लाँघने से चोर की अन्तर्धान (छिपनेवाली) आदि शक्तियाँ नष्ट हो जायेंगी—यह सोचकर शिव पर चढ़ी हुई फूलमाला वाटिकाद्वार पर बिखरवा दी। इसका फल यह हुआ कि इसके बाद वह गन्धर्वराज पुष्पवाटिका में प्रवेश करते ही कुण्ठित-शक्ति-सा हो गया। उसने समाधि द्वारा यह समझ लिया कि मेरी वह शक्ति शिवनिर्माल्य के लाँघने से ही स्तब्ध सी हो चली है। यह सोचकर परमदयालु भूतभावन श्रीशंकर भगवान् की यह वर्णनरूपी महिमा (महिम्नस्त्रोत्र) का करना प्रारम्भ किया। इससे निर्माल्य तथा शिव स्तुति की विशेष महत्ता सिद्ध हुई।

अमोघ शिवकवच

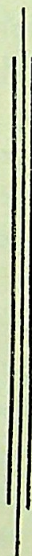


गीताप्रेस, गोरखपुर

मूल्य [illegible] पैसे

॥ श्रीहरिः ॥

अमोघ शिवकवच



अनुवादक—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री

गीताप्रेस, गोरखपुर

मुद्रक तथा प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

संवत् २०१८	प्रथम	संस्करण	१०,०००
संवत् २०२०	द्वितीय	संस्करण	१०,०००
संवत् २०२४	तृतीय	संस्करण	१०,०००
		कुल	३०,०००

मूल्य आठ पैसे

पता—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

अमोघशिवकवचम्

[यह अमोघ शिवकवच परम गुह्य, अत्यन्त आदरणीय, सब पापोंको दूर करनेवाला, सारे अमङ्गलोंको, विघ्न-बाधाओंको हरनेवाला, परम पवित्र, जयप्रद और सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाशक माना गया है। यह परम हितकारी है और सब भयोंको दूर करता है। इसके प्रभावसे क्षीणायु, मृत्युके समीप पहुँचा हुआ महान् रोगी मनुष्य भी शीघ्र नीरोगताको प्राप्त करता है और उसकी दीर्घायु हो जाती है। अर्थाभावसे पीड़ित मनुष्यकी सारी दरिद्रता दूर हो जाती है और उसको सुख-वैभवकी प्राप्ति होती है। पापी महापातकसे छूट जाता है और इसका भक्ति-श्रद्धापूर्वक धारण करनेवाला निष्काम पुरुष देहान्तके बाद दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त होता है।

महर्षि ऋषभने इसका उपदेश करके एक संकटग्रस्त राजाको दुःख-मुक्त किया था। यह कवच श्रीस्कन्दपुराणके ब्रह्मोत्तरखण्डमें है।

पहले विनियोग छोड़कर ऋष्यादिन्यास, करन्यास और हृदयादि-अङ्गन्यास करके भगवान् शंकरका ध्यान करे। तदनन्तर कवचका पाठ करे।]

अस्य श्रीशिवकवचस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीसदाशिवरुद्रो देवता, ह्रीं शक्तिः, वं कीलकम्, श्रीं ह्रीं क्लीं बीजम्, सदाशिवप्रीत्यर्थे शिवकवचस्तोत्रजपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ॐ ब्रह्मऋषये नमः शिरसि।

अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे।

श्रीसदाशिवरुद्रदेवतायै नमः हृदि।

ह्रीं-शक्तये नमः पादयोः।

वं-कीलकाय नमः नाभौ ।

श्रीं-ह्रीं-क्लींमिति बीजाय नमः गुह्ये ।

विनियोगाय नमः सर्वाङ्गे ।

अथ करन्यासः

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ ह्रीं रां सर्वशक्तिधाम्ने ईशानात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ नं रीं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ मं रूं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने मध्यमाभ्यां वषट् ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ शिं रैं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने वामदेवात्मने अनामिकाभ्यां हुम् ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने कनिष्ठिकाभ्यां वौषट् ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ यं रः अनादिशक्तिधाम्ने सर्वात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां फट् ।

हृदयाद्यङ्गन्यासः

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ ह्रीं रां सर्वशक्तिधाम्ने ईशानात्मने हृदयाय नमः ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ नं रीं नित्यतृप्तिधाम्ने तत्पुरुषात्मने शिरसे स्वाहा ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ मं रूं अनादिशक्तिधाम्ने अघोरात्मने शिखायै वषट् ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ शिं रैं स्वतन्त्रशक्तिधाम्ने वामदेवात्मने कवचाय हुम् ।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ वां रौं अलुप्तशक्तिधाम्ने सद्योजातात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ नमो भगवते ज्वलज्ज्वालामालिने ॐ यं रः अनादिशक्तिधाम्ने सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

अथ ध्यानम्

वज्रदंष्ट्रं त्रिनयनं कालकण्ठमरिंदमम्।
सहस्रकरमप्युग्रं वन्दे शम्भुमुमापतिम्॥

ऋषभ उवाच

अथापरं सर्वपुराणगुह्यं निःशेषपापौघहरं पवित्रम्।
जयप्रदं सर्वविपद्विमोचनं वक्ष्यामि शैवं कवचं हिताय ते॥
नमस्कृत्य महादेवं विश्वव्यापिनमीश्वरम्।
वक्ष्ये शिवमयं वर्म सर्वरक्षाकरं नृणाम्॥ १॥
शुचौ देशे समासीनो यथावत्कल्पितासनः।
जितेन्द्रियो जितप्राणश्चिन्तयेच्छिवमव्ययम्॥ २॥

जिनकी दाढ़ें वज्रके समान हैं, जो तीन नेत्र धारण करते हैं, जिनके कण्ठमें हालाहल-पानका नील चिह्न सुशोभित होता है, जो शत्रुभाव रखनेवालोंका दमन करते हैं, जिनके सहस्रों कर (हाथ अथवा किरणें) हैं तथा जो अभक्तोंके लिये अत्यन्त उग्र हैं, उन उमापति शम्भुको मैं प्रणाम करता हूँ।

ऋषभजी कहते हैं—जो सम्पूर्ण पुराणोंमें गोपनीय कहा गया है, समस्त पापोंको हर लेनेवाला है, पवित्र, जयदायक तथा सम्पूर्ण विपत्तियोंसे छुटकारा दिलानेवाला है, उस सर्वश्रेष्ठ शिवकवचका मैं तुम्हारे हितके लिये उपदेश करूँगा। मैं विश्वव्यापी ईश्वर महादेवजीको नमस्कार करके मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले इस शिवस्वरूप कवचका वर्णन करता हूँ॥ १॥ पवित्र स्थानमें यथायोग्य आसन बिछाकर बैठे। इन्द्रियोंको अपने वशमें करके प्राणायामपूर्वक अविनाशी भगवान् शिवका चिन्तन

हृत्पुण्डरीकान्तरसंनिविष्टं
स्वतेजसा व्याप्तनभोऽवकाशम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममनन्तमाद्यं
ध्यायेत्परानन्दमयं महेशम् ॥ ३ ॥

ध्यानावधूताखिलकर्मबन्ध-
श्चिरं चिदानन्दनिमग्नचेताः ।
षडक्षरन्याससमाहितात्मा
शैवेन कुर्यात् कवचेन रक्षाम् ॥ ४ ॥

मां पातु देवोऽखिलदेवतात्मा
संसारकूपे पतितं गभीरे ।
तन्नाम दिव्यं वरमन्त्रमूलं
धुनोतु मे सर्वमघं हृदिस्थम् ॥ ५ ॥

सर्वत्र मां रक्षतु विश्वमूर्ति-
र्ज्योतिर्मयानन्दघनश्चिदात्मा ।

करे ॥ २ ॥ 'परमानन्दमय भगवान् महेश्वर हृदय-कमलके भीतरकी कर्णिकामें विराजमान हैं, उन्होंने अपने तेजसे आकाशमण्डलको व्याप्त कर रक्खा है। वे इन्द्रियातीत, सूक्ष्म, अनन्त एवं सबके आदिकारण हैं।' इस तरह उनका चिन्तन करे ॥ ३ ॥ इस प्रकार ध्यानके द्वारा समस्त कर्मबन्धनका नाश करके चिदानन्दमय भगवान् सदाशिवमें अपने चित्तको चिरकालतक लगाये रहे। फिर षडक्षरन्यासके द्वारा अपने मनको एकाग्र करके मनुष्य निम्नाङ्कित शिवकवचके द्वारा अपनी रक्षा करे ॥ ४ ॥

'सर्वदेवमय महादेवजी गहरे संसार-कूपमें गिरे हुए मुझ असहायकी रक्षा करें। उनका दिव्य नाम जो उनके श्रेष्ठ मन्त्रका मूल है, मेरे हृदयस्थित समस्त पापोंका नाश करे ॥ ५ ॥ सम्पूर्ण विश्व जिनकी मूर्ति है, जो

अणोरणीयानुरुशक्तिरेकः
स ईश्वरः पातु भयादशेषात् ॥ ६ ॥
यो भूस्वरूपेण बिभर्ति विश्वं
पायात् स भूमेर्गिरिशोऽष्टमूर्तिः ।
योऽपां स्वरूपेण नृणां करोति
संजीवनं सोऽवतु मां जलेभ्यः ॥ ७ ॥
कल्पावसाने भुवनानि दग्ध्वा
सर्वाणि यो नृत्यति भूरिलीलः ।
स कालरुद्रोऽवतु मां दवाग्ने-
र्वात्यादिभीतेरखिलाच्च तापात् ॥ ८ ॥
प्रदीप्तविद्युत्कनकावभासो
विद्यावराभीतिकुठारपाणिः ।

ज्योतिर्मय आनन्दघनस्वरूप चिदात्मा हैं, वे भगवान् शिव मेरी सर्वत्र रक्षा करें। जो सूक्ष्मसे भी अत्यन्त सूक्ष्म हैं, महान् शक्तिसे सम्पन्न हैं, वे अद्वितीय 'ईश्वर' महादेवजी सम्पूर्ण भयोंसे मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥ जिन्होंने पृथ्वीरूपसे इस विश्वको धारण कर रक्खा है, वे अष्टमूर्ति 'गिरिश' पृथ्वीसे मेरी रक्षा करें। जो जलरूपसे जीवोंको जीवन-दान दे रहे हैं, वे 'शिव' जलसे मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥ जो विशद लीलाविहारी 'शिव' कल्पके अन्तमें समस्त भुवनोंको दग्ध करके (आनन्दसे) नृत्य करते हैं, वे 'कालरुद्र' भगवान् दावानलसे, आँधी-तूफानके भयसे और समस्त तापोंसे मेरी रक्षा करें ॥ ८ ॥ प्रदीप्त विद्युत् एवं स्वर्णके सदृश जिनकी कान्ति है; विद्या, वर और अभय (मुद्राएँ) तथा कुल्हाड़ी जिनके कर-कमलोंमें सुशोभित हैं; जो

चतुर्मुखस्तत्पुरुषस्त्रिनेत्रः
प्राच्यां स्थितं रक्षतु मामजस्रम् ॥९॥
कुठारवेदाङ्कुशपाशशूल-
कपालढक्काक्षगुणान् दधानः।
चतुर्मुखो नीलरुचिस्त्रिनेत्रः
पायादघोरो दिशि दक्षिणस्याम् ॥१०॥
कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकावभासो
वेदाक्षमालावरदाभयाङ्कः।
त्र्यक्षश्चतुर्वक्त्र उरुप्रभावः
सद्योऽधिजातोऽवतु मां प्रतीच्याम् ॥११॥
वराक्षमालाभयटङ्कहस्तः
सरोजकिञ्जल्कसमानवर्णः।
त्रिलोचनश्चारुचतुर्मुखो मां
पायादुदीच्यां दिशि वामदेवः ॥१२॥

चतुर्मुख और त्रिलोचन हैं, वे भगवान् 'तत्पुरुष' पूर्व दिशामें निरन्तर मेरी रक्षा करें ॥९॥ जिन्होंने अपने हाथोंमें कुल्हाड़ी, वेद, अङ्कुश, फंदा, त्रिशूल, कपाल, डमरू और रुद्राक्षकी मालाको धारण कर रक्खा है तथा जो चतुर्मुख हैं, वे नीलकान्ति त्रिनेत्रधारी भगवान् 'अघोर' दक्षिण दिशामें मेरी रक्षा करें ॥ १० ॥ कुन्द, चन्द्रमा, शङ्ख और स्फटिकके समान जिनकी उज्ज्वल कान्ति है; वेद, रुद्राक्ष-माला, वरद और अभय (मुद्राओं) से जो सुशोभित हैं; वे महाप्रभावशाली चतुरानन एवं त्रिलोचन भगवान् 'सद्योजात' पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें ॥ ११ ॥ जिनके हाथोंमें वर एवं अभय (मुद्राएँ), रुद्राक्षमाला और टाँकी विराजमान हैं तथा कमल-किञ्जल्कके सदृश जिनका गौर वर्ण है, वे सुन्दर चार मुखवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् 'वामदेव' उत्तर

वेदाभयेष्टाङ्कुशपाशटङ्क-
कपालढक्काक्षकशूलपाणिः ।
सितद्युतिः पञ्चमुखोऽवतान्मा-
मीशान ऊर्ध्वं परमप्रकाशः ॥१३॥
मूर्द्धानमव्यान्मम चन्द्रमौलि-
र्भालं ममाव्यादथ भालनेत्रः ।
नेत्रे ममाव्याद् भगनेत्रहारी
नासां सदा रक्षतु विश्वनाथः ॥१४॥
पायाच्छ्रुती मे श्रुतिगीतकीर्तिः
कपोलमव्यात् सततं कपाली ।
वक्त्रं सदा रक्षतु पञ्चवक्त्रो
जिह्वां सदा रक्षतु वेदजिह्वः ॥१५॥
कण्ठं गिरीशोऽवतु नीलकण्ठः
पाणिद्वयं पातु पिनाकपाणिः ।
दोर्मूलमव्यान्मम धर्मबाहु-
र्वक्षःस्थलं दक्षमखान्तकोऽव्यात् ॥१६॥

दिशामें मेरी रक्षा करें ॥ १२ ॥ जिनके करकमलोंमें वेद, अभय और वर (मुद्राएँ), अङ्कुश, टाँकी, फंदा, कपाल, डमरू, रुद्राक्षमाला और त्रिशूल सुशोभित हैं, जो श्वेत आभासे युक्त हैं, वे परम प्रकाशरूप पञ्चमुख भगवान् 'ईशान' मेरी ऊपरसे रक्षा करें ॥ १३ ॥ भगवान् 'चन्द्रमौलि' मेरे सिरकी, 'भालनेत्र' मेरे ललाटकी, 'भगनेत्रहारी' मेरे नेत्रोंकी और 'विश्वनाथ' मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करें ॥ १४ ॥ 'श्रुतिगीतकीर्ति' मेरे कानोंकी, 'कपाली' निरन्तर मेरे कपोलोंकी, 'पञ्चमुख' मुखकी तथा 'वेदजिह्व' जीभकी रक्षा करें ॥ १५ ॥ 'नीलकण्ठ' महादेव मेरे गलेकी, 'पिनाकपाणि' मेरे दोनों हाथोंकी, 'धर्मबाहु' दोनों कंधोंकी तथा 'दक्षयज्ञ-विध्वंसी' मेरे

ममोदरं पातु गिरीन्द्रधन्वा
मध्यं ममाव्यान्मदनान्तकारी ।
हेरम्बतातो मम पातु नाभिं
पायात् कटी धूर्जटिरीश्वरो मे ॥१७॥
ऊरुद्वयं पातु कुबेरमित्रो
जानुद्वयं मे जगदीश्वरोऽव्यात् ।
जङ्घायुगं पुङ्गवकेतुरव्यात्
पादौ ममाव्यात् सुरवन्द्यपादः ॥१८॥
महेश्वरः पातु दिनादियामे
मां मध्ययामेऽवतु वामदेवः ।
त्रियम्बकः पातु तृतीययामे
वृषध्वजः पातु दिनान्त्ययामे ॥१९॥
पायान्निशादौ शशिशेखरो मां
गङ्गाधरो रक्षतु मां निशीथे ।

वक्षःस्थलकी रक्षा करें ॥ १६ ॥ 'गिरीन्द्रधन्वा' मेरे पेटकी, 'कामदेवके नाशक' मध्यदेशकी, 'गणेशजीके पिता' मेरी नाभिकी तथा 'धूर्जटि' मेरी कटिकी रक्षा करें ॥ १७ ॥ 'कुबेरमित्र' मेरे दोनों जाँघोंकी, 'जगदीश्वर' दोनों घुटनोंकी, 'पुङ्गवकेतु' दोनों पिंडलियोंकी और 'सुरवन्द्यचरण' मेरे पैरोंकी सदैव रक्षा करें ॥ १८ ॥ 'महेश्वर' दिनके पहले पहरमें मेरी रक्षा करें। 'वामदेव' मध्य पहरमें मेरी रक्षा करें। 'त्र्यम्बक' तीसरे पहरमें और 'वृषभध्वज' दिनके अन्तवाले पहरमें मेरी रक्षा करें ॥ १९ ॥ 'शशिशेखर' रात्रिके आरम्भमें, 'गङ्गाधर' अर्धरात्रिमें, 'गौरीपति' रात्रिके

गौरीपतिः पातु निशावसाने
मृत्युंजयो रक्षतु सर्वकालम् ॥२०॥
अन्तःस्थितं रक्षतु शंकरो मां
स्थाणुः सदा पातु बहिःस्थितं माम् ।
तदन्तरे पातु पतिः पशूनां
सदाशिवो रक्षतु मां समन्तात् ॥२१॥
तिष्ठन्तमव्याद्भुवनैकनाथः
पायाद् व्रजन्तं प्रमथाधिनाथः ।
वेदान्तवेद्योऽवतु मां निषण्णं
मामव्ययः पातु शिवः शयानम् ॥२२॥
मार्गेषु मां रक्षतु नीलकण्ठः
शैलादिदुर्गेषु पुरत्रयारिः ।
अरण्यवासादिमहाप्रवासे
पायान्मृगव्याध उदारशक्तिः ॥२३॥
कल्पान्तकाटोपपटुप्रकोपः
स्फुटाट्टहासोच्चलिताण्डकोशः ।

अन्तमें और 'मृत्युंजय' सर्वकालमें मेरी रक्षा करें ॥ २० ॥ 'शंकर' घरके भीतर रहनेपर मेरी रक्षा करें । 'स्थाणु' बाहर रहनेपर मेरी रक्षा करें । 'पशुपति' बीचमें मेरी रक्षा करें और 'सदाशिव' सब ओर मेरी रक्षा करें ॥ २१ ॥ 'भुवनैकनाथ' खड़े होनेके समय, 'प्रमथनाथ' चलते समय, 'वेदान्तवेद्य' बैठे रहनेके समय और 'अविनाशी शिव' सोते समय मेरी रक्षा करें ॥ २२ ॥ 'नीलकण्ठ' रास्तेमें मेरी रक्षा करें । 'त्रिपुरारि' शैलादि दुर्गोंमें और उदारशक्ति 'मृगव्याध' वनवासादि महान् प्रवासोंमें मेरी रक्षा करें ॥ २३ ॥ जिनका प्रबल क्रोध कल्पोंका अन्त करनेमें अत्यन्त पटु

घोरारिसेनार्णवदुर्निवार-
महाभयाद् रक्षतु वीरभद्रः ॥२४॥
पत्त्यश्वमातङ्गघटावरूथ-
सहस्रलक्षायुतकोटिभीषणम् ।
अक्षौहिणीनां शतमाततायिनां
छिन्द्यान्मृडो घोरकुठारधारया ॥२५॥
निहन्तु दस्यून् प्रलयानलार्चि-
र्ज्वलत् त्रिशूलं त्रिपुरान्तकस्य ।
शार्दूलसिंहर्क्षवृकादिहिंस्रान्
संत्रासयत्वीशधनुः पिनाकम् ॥२६॥
दुःस्वप्नदुश्शकुनदुर्गतिदौर्मनस्य-
दुर्भिक्षदुर्व्यसनदुस्सहदुर्यशांसि ।
उत्पाततापविषभीतिमसद्ग्रहार्ति-
व्याधींश्च नाशयतु मे जगतामधीशः ॥२७॥

है, जिनके प्रचण्ड अट्टहाससे ब्रह्माण्ड काँप उठता है, वे 'वीरभद्रजी' समुद्रके सदृश भयानक शत्रुसेनाके दुर्निवार महान् भयसे मेरी रक्षा करें ॥ २४ ॥ भगवान् 'मृड' मुझपर आततायीरूपसे आक्रमण करनेवालोंकी हजारों, दस हजारों, लाखों और करोड़ों पैदलों, घोड़ों और हाथियोंसे युक्त अति भीषण सैकड़ों अक्षौहिणी सेनाओंका अपनी घोर कुठार-धारसे भेदन करें ॥ २५ ॥ भगवान् 'त्रिपुरान्तक' का प्रलयाग्निके समान ज्वालाओंसे युक्त जलता हुआ त्रिशूल मेरे दस्युदलका विनाश कर दे और उनका पिनाक धनुष चीता, सिंह, रीछ, भेड़िया आदि हिंस्र जन्तुओंको संत्रस्त करे ॥ २६ ॥ वे जगदीश्वर मेरे बुरे स्वप्न, बुरे शकुन, बुरी गति, मनकी दुष्ट भावना, दुर्भिक्ष, दुर्व्यसन, दुस्सह अपयश, उत्पात, संताप, विषभय, दुष्ट ग्रहोंकी पीड़ा तथा समस्त रोगोंका नाश करें ॥ २७ ॥

ॐ नमो भगवते सदाशिवाय सकलतत्त्वात्मकाय सकलतत्त्वविहाराय सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकभर्त्रे सकललोकैकहर्त्रे सकललोकैकगुरवे सकललोकैकसाक्षिणे सकलनिगमगुह्याय सकलवरप्रदाय सकलदुरितार्त्तिभञ्जनाय सकलजगदभयंकराय सकललोकैकशंकराय शशाङ्कशेखराय शाश्वतनिजाभासाय निर्गुणाय निरुपमाय नीरूपाय निराभासाय निरामयाय निष्प्रपञ्चाय निष्कलङ्काय निर्द्वन्द्वाय निस्सङ्गाय निर्मलाय निर्गमाय नित्यरूपविभवाय निरुपमविभवाय निराधाराय नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तप्रकाशतेजोरूपाय जय जय महारुद्र महारौद्र भद्रावतार दुःखदावदारण महाभैरव कालभैरव कल्पान्तभैरव कपालमालाधर खट्वाङ्गखड्गचर्मपाशाङ्कुशडमरु-

---

ॐ जिनका वाचक है, सम्पूर्ण तत्त्व जिनके स्वरूप हैं, जो सम्पूर्ण तत्त्वोंमें विचरण करनेवाले, समस्त लोकोंके एकमात्र कर्ता और सम्पूर्ण विश्वके एकमात्र भरण-पोषण करनेवाले हैं, जो अखिल विश्वके एक ही संहारकारी, सब लोकोंके एकमात्र गुरु, समस्त संसारके एक ही साक्षी, सम्पूर्ण वेदोंके गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों और पीड़ाओंका नाश करनेवाले, सारे संसारको अभय देनेवाले, सब लोकोंके एकमात्र कल्याणकारी, चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले, अपने सनातन प्रकाशसे प्रकाशित होनेवाले, निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपञ्च, निष्कलङ्क, निर्द्वन्द्व, निस्सङ्ग, निर्मल, गतिशून्य, नित्यरूप, नित्य-वैभवसे सम्पन्न अनुपम ऐश्वर्यसे सुशोभित, आधार-शून्य, नित्य-शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय तथा परम शान्त, प्रकाशमय, तेजःस्वरूप हैं, उन भगवान् सदाशिवको नमस्कार है । हे महारुद्र ! महारौद्र, भद्रावतार, दुःखदावाग्नि-विदारण, महाभैरव, कालभैरव, कल्पान्तभैरव, कपालमालाधारी !

शूलचापबाणगदाशक्तिभिन्दिपालतोमरमुसलमुद्गरपट्टिशपरशु-
परिघभुशुण्डीशतघ्नीचक्राद्यायुधभीषणकर सहस्रमुख दंष्ट्राकराल
विकटाट्टहासविस्फारितब्रह्माण्डमण्डल नागेन्द्रकुण्डल नागेन्द्रहार
नागेन्द्रवलय नागेन्द्रचर्मधर मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक
विरूपाक्ष विश्वेश्वर विश्वरूप वृषभवाहन विषभूषण विश्वतोमुख
सर्वतो रक्ष रक्ष मां ज्वल ज्वल महामृत्युभयमपमृत्युभयं नाशय
नाशय रोगभयमुत्सादयोत्सादय विषसर्पभयं शमय शमय
चोरभयं मारय मारय मम शत्रूनुच्चाटयोच्चाटय शूलेन विदारय
विदारय कुठारेण भिन्धि भिन्धि खड्गेन छिन्धि छिन्धि
खट्वाङ्गेन विपोथय विपोथय मुसलेन निष्पेषय निष्पेषय बाणैः
संताडय संताडय रक्षांसि भीषय भीषय भूतानि विद्रावय विद्रावय

हे खट्वाङ्ग, खड्ग, ढाल, फंदा, अङ्कुश, डमरू, त्रिशूल, धनुष, बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मुसल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डी, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधोंके द्वारा भयंकर हाथोंवाले, हजार मुख और दंष्ट्रासे कराल, विकट अट्टहास्यसे विशाल ब्रह्माण्ड-मण्डलका विस्तार करनेवाले, नागेन्द्र वासुकिको कुण्डल, हार, कङ्कण तथा ढालके रूपमें धारण करनेवाले, मृत्युंजय, त्रिनेत्र, त्रिपुरनाशक, भयंकर नेत्रोंवाले, विश्वेश्वर, विश्वरूपमें प्रकट, बैलपर सवारी करनेवाले, विषको गलेमें भूषणरूपमें धारण करनेवाले तथा सब ओर मुखवाले शंकर ! आपकी जय हो, जय हो । आप मेरी सब ओरसे रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । प्रज्वलित होइये, प्रज्वलित होइये । मेरे महामृत्यु-भयका तथा अपमृत्युके भयका नाश कीजिये, नाश कीजिये । (बाहरी और भीतरी) रोग-भयको जड़से मिटा दीजिये, जड़से मिटा दीजिये । विष और सर्पके भयको शान्त कीजिये, शान्त कीजिये । चोर-भयको मार डालिये, मार डालिये । मेरे (काम-क्रोध-लोभादि भीतरी तथा इन्द्रियोंके

कूष्माण्डवेतालमारीगणब्रह्मराक्षसान् संत्रासय संत्रासय ममाभयं कुरु कुरु वित्रस्तं मामाश्वासयाश्वासय नरकभयान्मामुद्धारयोद्धारय संजीवय संजीवय क्षुत्तृड्भ्यां मामाप्याययाप्यायय दुःखातुरं मामानन्दयानन्दय शिवकवचेन मामाच्छादयाच्छादय त्र्यम्बक सदाशिव नमस्ते नमस्ते नमस्ते ।

ऋषभ उवाच

इत्येतत्कवचं शैवं वरदं व्याहृतं मया ।
सर्वबाधाप्रशमनं रहस्यं सर्वदेहिनाम् ॥२८॥

और शरीरके द्वारा होनेवाले पाप-कर्मरूपी बाहरी) शत्रुओंका उच्चाटन कीजिये, उच्चाटन कीजिये; त्रिशूलके द्वारा विदारण कीजिये, विदारण कीजिये; कुठारके द्वारा काट डालिये, काट डालिये; खड्गके द्वारा छेद डालिये; छेद डालिये; खट्वाङ्गके द्वारा नाश कीजिये, नाश कीजिये; मुसलके द्वारा पीस डालिये, पीस डालिये और बाणोंके द्वारा बींध डालिये, बींध डालिये । आप (मेरी हिंसा करनेवाले) राक्षसोंको भय दिखाइये, भय दिखाइये । भूतोंको भगा दीजिये, भगा दीजिये । कूष्माण्ड, वेताल, मारियों और ब्रह्मराक्षसोंको संत्रस्त कीजिये, संत्रस्त कीजिये । मुझको अभय दीजिये, अभय दीजिये । मुझ अत्यन्त डरे हुएको आश्वासन दीजिये, आश्वासन दीजिये । नरक-भयसे मेरा उद्धार कीजिये, उद्धार कीजिये । मुझे जीवन्-दान दीजिये, जीवन-दान दीजिये । क्षुधा-तृषाका निवारण करके मुझको आप्यायित कीजिये, आप्यायित कीजिये । आपकी जय हो, जय हो । मुझ दुःखातुरको आनन्दित कीजिये, आनन्दित कीजिये । शिवकवचसे मुझे आच्छादित कीजिये, आच्छादित कीजिये । त्र्यम्बक सदाशिव ! आपको नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ।

ऋषभजी कहते हैं—इस प्रकार यह वरदायक शिवकवच मैंने कहा है । यह सम्पूर्ण बाधाओंको शान्त करनेवाला तथा समस्त देहधारियोंके

यः सदा धारयेन्मर्त्यः शैवं कवचमुत्तमम् ।
न तस्य जायते क्वापि भयं शम्भोरनुग्रहात् ॥२९॥
क्षीणायुर्मृत्युमापन्नो महारोगहतोऽपि वा ।
सद्यः सुखमवाप्नोति दीर्घमायुश्च विन्दति ॥३०॥
सर्वदारिद्र्यशमनं सौमङ्गल्यविवर्धनम् ।
यो धत्ते कवचं शैवं स देवैरपि पूज्यते ॥३१॥
महापातकसंघातैर्मुच्यते चोपपातकैः ।
देहान्ते शिवमाप्नोति शिववर्मानुभावतः ॥३२॥
त्वमपि श्रद्धया वत्स शैवं कवचमुत्तमम् ।
धारयस्व मया दत्तं सद्यः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि ॥३३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां तृतीये ब्रह्मोत्तरखण्डे अमोघशिवकवचं सम्पूर्णम् ।

लिये गोपनीय रहस्य है॥ २८॥ जो मनुष्य इस उत्तम शिवकवचको सदा धारण करता है, उसे भगवान् शिवके अनुग्रहसे कभी और कहीं भी भय नहीं होता ॥ २९ ॥ जिसकी आयु क्षीण हो चली है, जो मरणासन्न हो गया है अथवा जिसे महान् रोगोंने मृतक-सा कर दिया है, वह भी इस कवचके प्रभावसे तत्काल सुखी हो जाता और दीर्घायु प्राप्त कर लेता है ॥ ३० ॥ शिवकवच समस्त दरिद्रताका शमन करनेवाला और सौमङ्गल्यको बढ़ानेवाला है; जो इसे धारण करता है, वह देवताओंसे भी पूजित होता है ॥ ३१ ॥ इस शिवकवचके प्रभावसे मनुष्य महापातकोंके समूहों और उपपातकोंसे भी छुटकारा पा जाता है तथा शरीरका अन्त होनेपर शिवको पा लेता है ॥ ३२ ॥ वत्स ! तुम भी मेरे दिये हुए इस उत्तम शिवकवचको श्रद्धापूर्वक धारण करो, इससे तुम शीघ्र और निश्चय ही कल्याणके भागी होओगे ॥ ३३ ॥

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)



स्तोत्र संग्रहः

१०८ श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य-
विद्यावाचस्पति विष्णुदेवानन्द-
गिरीणामनुज्ञया श्रीकैलासाश्रमा-
ध्यक्षेण मुद्रापयित्वा प्रकाशितः।

सप्तमावृत्तिः २०००

संवत् २०१८] [सन् १९६२

॥ श्रीः ॥

कैलासाश्रम की महिमा

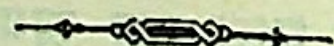
माँ भागीरथी गङ्गा के विमल तीर पर पुण्यमयी पर्वतीय भूमि मुनिकीरेती (ऋषिकेश) में एक लघु किन्तु शोभाशाली पहाड़ी पर सड़कके किनारे यह विशाल आश्रम बना हुआ है।

ऋषिकेश से लक्ष्मणझूले को जाने वाले महोदय इस आश्रम में भगवान अभिनवचन्द्रेश्वर महादेव एवं जगद्गुरु भगवान शङ्कराचार्य जी के पुण्यमय दर्शन कर कृतकृत्य होते हैं। जहां अद्वैतवाद एवं ब्रह्मविद्या का स्रोत निरंतर बहता है जिसका अनेकों विद्वान तपस्वी महात्मा सर्वदा उपदेश-सलिल पान कर अपना जीवन सफल करते हैं, और दूर २ से आकर जहां अनेकों संन्यासी विविध शास्त्रों का अध्ययन एवं मनन कर देश के प्रकाण्ड विद्वानों में त्याग, वैराग्य एवं विद्वत्ता की प्रसिद्धि प्राप्तकर चुके हैं। यही पुण्यमय आश्रम कलासाश्रम के नाम से प्रसिद्ध है।

यहां परमपूज्य वेद एवं सर्व प्रकार के शास्त्रीय सद्ग्रन्थों का एक महत्वपूर्ण पुस्तकालय है।

आश्रम के भूतपूर्व महामण्डलेश्वर विद्वद्वरिष्ठ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्री १०८ स्वामी विष्णुदेवानन्दगिरि जी महाराज हैं जिन के द्वारा आज भारत के अनेकों प्रान्तों में श्री सनातन धर्म का सतत सत्संग प्रचार हो रहा है। आप भारत के विख्यात एवं मर्मज्ञ सन्त विद्वानों में आदरणीय हैं। आपके भाषण सुरुचिपूर्ण तथा विशेष आकर्षक होते हैं जिन्हें सुनकर महात्मा एवं जनता का हृदय परम संतुष्ट हो अपने धर्म पथ पर आरूढ़ हो जाता है। ॥ इति ॥

निवेदक—भक्तवृन्द।



* ॐ *



श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य
श्री १०८ स्वामी विष्णुदेवानन्दगिरि जी महाराज मण्डलेश्वर,
कैलासाश्रम हृषीकेश [देहरादून]



कैलासाधिपतिं वन्दे भक्तारिष्टहरं हरम् ।
गौरीविनायकोपेतं शङ्करं लोकशंकरम् ॥

१०८ श्रीमत्स्वामिप्रकाशानन्दवर्णनम् ।

(१)

येषां दुस्तरशोककर्दमपतद्धस्तावलम्बो दृढो
मूलोन्मूलनकौतुकी च विशयोद्भिन्नांकुराणां मुहुः ।
वाचां वैभव आत्मबोधनपटुस्तान्भिक्षुवर्य्यप्रका-
शानन्दाभिधदेशिकेन्द्रमहितान्प्रेम्णाऽभिवन्दामहे ॥

(२)

आह्लादं तनुतेऽद्भुतं कमपि यत्सूक्तिः सुधासोदरा
स्वाचान्तौ भववारिधेः सकरुणापाङ्गोऽस्त्यगस्त्योऽपरः ।
येषां मस्करिवृन्दवन्दितपदांस्ताञ्छ्रीयतीशप्रका-
शानन्दाभिधसद्गुरून्परमया प्रीत्या नमस्कुर्महे ॥

(३)

ॐनमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये ।
निर्मलाय प्रशांताय श्रीप्रकाशात्मने नमः ॥

(४)

निधयेऽखिलविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम् ।
गुरवे विश्वलोकानां श्री प्रबोधात्मने नमः ॥

इमान्श्लोकान् पूर्णानन्दगिर्याद्यनुचरप्रार्थित १०८ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्याः स्वामिगोविन्दानन्दगिरीतिशुभाभिधेयाश्चक्रुः ॥





स्तोत्र संग्रहः ।

शिवप्रातःस्मरणस्तोत्रम् १

श्रीगणेशाय नमः ।

प्रातः स्मरामि गिरिजापतिमादितेय-
स्रोतस्विनीस्रगभिरामजटाकलापम् ।
पीयूषभानुमुकुटं शिखिपुष्पवन्ता-
न्त्वं नीलकण्ठमनुपाधिकृपामृताब्धिम् ॥

(२)

प्रातर्नमामि निखिलेश्वरशासितारं
तारं समस्तनिगमेषु कृतप्रचारम् ।
कामं दहन्तमहिमन्तमनन्तमन्तः-
सन्तं सतीकुलललामकलत्रवन्तम् ॥

(३)

प्रातर्भजामि निखिलौषधिभर्तृभूषा-

रत्नं क्रियासु कुशलं भवरोगभीतः ।

पीयूषपाणिमगदप्रदमागमस्वं---

वर्षिष्ठमार्त्तकरुणापरवन्तमीशम् ॥

(४)

श्लोकत्रयं विरचितं यमिना प्रबोधा-

नन्देन नन्दयतु शश्वदिदं प्रसन्नम् ।

धन्यानखण्डविभवानमृतांशुखण्ड-

चूडामणिस्मरणलोलुपचित्तचुञ्चून् ॥

इति १०८ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिप्रकाशानन्दपुरी विरचितं शिवप्रातःस्मरणस्तोत्रं समाप्तम् ॥

दुर्गाप्रातःस्मरणस्तोत्रम् २

(१)

प्रातः स्मरन्निदमहं गिरिराजकन्या-

मार्त्तार्त्तिमोचनचणस्मरणां विनीतः ।

आवेदयामि करुणामृतपूरवर्षै-

राप्लावयाशु जनमार्त्तमिमं प्रपन्नम् ॥

(२)

प्रातर्नमन्निदमहं विनिवेदयामि
श्रीमेनकेक्षणचकोरसुधांशुलेखाम् ।
शिष्टान्यहानि मम सन्तु पवित्रितानि
त्वत्पादचिन्तनसमाहृतहृद्विलासैः ॥

(३)

प्रातर्भजन्नहमवाप्तसमस्तकामां-
कामान्तकारिमहिलां महितां हिताय ।
मातर्जहीहि मम वाञ्छितसंविधाने-
ऽवज्ञां कृताञ्जलिरिदं विनिवेदयामि ॥

(४)

श्लोकत्रयं विरचितं यमिना प्रबोधा-
नन्देन नन्दयतु शश्वदिदं प्रसन्नम् ।
श्रीमन्महेशनयनोन्मदभृङ्गमाला-
लास्यास्पदाम्बुजमुखीकरुणैकपात्रान् ॥

इति १०८ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिप्रकाशानन्दपुरी-
विरचितं दुर्गाप्रातःस्मरण स्तोत्रं संपूर्णम् ॥

शिवाष्टमूर्तिस्तोत्रम् ३

(१)

ॐतत्सदित्यमलधीभिरधीयमान-
मानन्दकन्दमवबोधमसद्विविक्तम् ।
यं ग्राहयन्ति निगमागमशासनानि
प्रत्यक्तया तमगजापतिमाश्रयामः ॥

(२)

ॐभूर्भुवःस्वरिति तत्सवितुर्वरेण्यं
ध्यायेम मन्मथरिपोर्धिषणाः क्रियासु ।
यन्नः प्रचोदयति भर्ग ऋगादिभिस्त-
द्गीतस्य शम्भुशिवरुद्रमुखैः पदौघैः ॥

(३)

यस्मादिदं जगदशेषविशेषहीना-
ज्जातं भुजङ्गम इव प्रतिभाति रज्ज्वाम् ।
यस्मिन्विनश्यदखिलं न खिलं यमेति
हंसं नुमस्तममलं मुनिमानसानाम् ॥

(४)

ब्रह्माच्युतादिमुकुटव्यतिषक्तपुष्प-
मालाविलासरसतुन्दिलितारुणश्रीः ।
भूयान्मृगाङ्ककलिकाललितावतंस-
पादाब्जरेणुरभिवाञ्छितसिद्धये नः ॥

(५)

आमोदितो दितिजनाथशिरःप्रसूनै-
र्देवेन्द्रमौलिसुमनोमकरन्दपीनः ।
बुद्ध्या युनक्तु शुभया भवतापहारी
मुग्धेन्दुमौलिचरणाम्बुजरेणुरस्मान् ॥

(६)

आह्लादकत्वमपि चिन्तनतोऽधिगन्तुं
शीतांशुरग्निरखिलाशनदोषहानिम् ।
हार्दान्धकारपरिहारपटुत्वमर्को
यं सेवते नयनभावगतस्तमीडे ॥

(७)

जूटेऽपगां शिरसि चन्द्रकलां कृशानुं
भानुं सुधांशुमधिदृष्ट्यधरे स्मितं च ।
कण्ठे विषं हृदि कृपाममृतं करे च
कृत्तिं कटौ मृगपतेरगराजपुत्रीम् ॥

(८)

अङ्के शिरांस्यपि मनांसि पदाब्जयुग्मे
देवासुरेश्वयमिनां भसितं सितं च ।
भूषाविधौ च भुजगान्भवमादधानं
ज्योत्स्नाब्धिफेनघटितामिव मूर्तिमीडे ॥

(९)

रङ्गस्थलीश पुरुषार्थचतुष्टयस्य
रक्षास्पदं कृतलयस्खलितामराणाम् ।
पुष्णाति मातृवदशेषजनानसौ या
सर्वंसहा विजयते तव मूर्तिरेषा ॥

(१०)

आप्यायिनी तनुभृतां मलनाशिनी च
धात्रीव नाकफलकर्मनिदानमेकम् ।
येयं त्रिलोकसुखदा विविधात्मना सा
मूर्तिर्विभो विजयते तव जीवनाख्या ॥

(११)

आधाय वेदविधिना शिव पञ्चधा यां
प्रीणन्ति दानवरिपून् कृतिनो वितानः ।
कर्त्री लयस्य जगतामपि पालनस्य
सा ते तनुर्विजयते हुतभुक्स्वरूपा ॥

(१२)

यां जीवनौषधमिमां पवनाभिधानां
त्यक्त्वा न जीवितुमपि क्षणमेकमीष्टे ।
कोऽपीह गन्तुमपरत्र च लोकयात्रा-
नेत्री तनुर्विजयते तव सा महेश ॥

(१३)

आधारमीश गणनापिगताण्डकानां
सीम्नामभूमिरखिलान्तरबाह्यलीना ।
मीना इवान्तरुदकं भुवनानि यस्या-
माभान्ति सा विजयते तनुरम्बरं ते ॥

(१४)

उच्चावचासु तनुषु प्रविशन्सुखैको
नानाविधः स्फुरति यः पुरुषोऽविवेकात् ।
मुक्तोऽपि बद्ध इव भाति च सच्चिदात्मा
सा ते तनुर्विजयते जगदेकबन्धो ॥

(१५)

ह्लादं तनोति कुरुते तमसो विनाशं
तापं धुनोति विबुधानपि चौषधीर्या ।
पुष्णाति सा त्रिभुवनाभरणोज्ज्वलश्री-
रीशान ते विजयतेऽमृत भानुमूर्तिः ॥

(१६)

या स्तूयते श्रुतिभिरीश तनूरशेष-
लोकप्रवृत्तिजननी तिमिरं धुनाना ।
देवैः कृताञ्जलिपुटैर्मुनिभिश्च सा ते
नित्यं नुता विजयते तपनाभिधाना ॥

(१७)

अष्टाभिराभिरशरीर तनूभिरस्मां-
स्त्रायस्व लोकधिषणातिगतप्रभाव ।
बन्धुर्न कोऽपि भवदुःखशतार्दितानां
कारुण्यमङ्गलगृहाद्भवतः परोऽस्ति ॥

(१८)

आर्ता वयं भव भवप्रभवामयैस्त्वं
चार्तार्तिनाशनमखे खलु दीक्षितोऽतः ।
अर्थामहे निहतकाम निकाममेतद्-
बाधौघबाधनविधौ कुरु मावहेलाम् ॥

(१९)

संसारवाडवशिखापरिलीढगात्रा-
न्पात्रान्सुधारसभराकुलदृक्छटानाम् ।
त्वं चेदकारणकृपाकुलवासभूमि-
र्भूमञ्जहासि बत कँ कृपणाः श्रयन्तु ॥

(२०)

संसारसागरभयङ्करगोधिकानां
चेत्त्रायसे बत न मां कवलीभवन्तम् ।
ब्रूयान्न कः कृपणशोकविमोककारिन्
कारुण्यमस्तमगमत् किलनिर्निमित्तम् ॥

(२१)

शम्भो सुधाकरकलाकलितावतंस
स्थाणो सुधाशनसरिल्ललितावचूड ।
श्रीकण्ठ कातरमनाथमनाथबन्धो
त्रायस्व शोकदलितं करुणाम्बुधे माम् ॥

(२२)

स्वर्गापगाच्छुरितशीतमयूखभानु-
वर्धिष्णुगौररुचिरञ्जितरम्यमूर्तिः ।
भूयादनङ्गदमनो दमनो रिपूणां
नालिङ्गितार्थकरुणावरुणालयो नः ॥

(२३)

गङ्गाधरा शशिकलाललिता त्रिनेत्रा
नीला गले करतलेऽमृतकुम्भभर्त्री ।
कर्पूरपूरघटितेव पुनातु काचित्
सौभाग्यसम्पदतुला गिरिराजपुत्र्याः ॥

(२४)

क्षीराब्धिफेनशरदिन्दुसुधावदात-
कृत्या भवन्ति न कदापि भवामयानाम् ।
यस्मात्कृपारसमवाप्य भुवः स विज्ञः
पीयूषपाणिरवताद्भिषजां वरेण्यः ॥

(२५)

येनाक्रियन्त भुवनानि विचित्रभोग-
योगाभिरामविषमाणि कपालयुग्मे ।
कीर्णानि नाकिनरनागमुखैः स नोऽव्याद्
ब्रह्माण्डभाण्डघटनाचतुरः कुलालः ॥

(२६)

संसारदुर्जरपटं त्रिभिरेव तेने
चित्रं गुणैरपगताखिलतर्कचर्चाम् ।
बिभ्रच्चमत्कृतिकरीं रचनामसौ यः
पायान्मृगाङ्कमुकुटः प्रथमः कुविन्दः ॥

(२७)

आह्लादिनो विजयिनः शमिनोऽपि चार्तान्
क्रूरान्विधाय नटयन्नृसुरादिपात्रान् ।
यो मोदते स सुखयत्वनपेक्षकोऽस्मान्
ब्रह्माण्डनाटकमहामतिसूत्रधारः ॥

(२८)

पापं दृशा शासितकामकालया
तापं सुधासूतिमरीचिमालया ।
महान्धकारं निशितांशुजालया
नाशं नयोमेश्वर मे विशालया ॥

(२९)

जटास्खलद्दैवनदीतरङ्गै-
र्भालेन्दुरश्मिच्छुरितैः सदा नः ।
सुरासुराराधितपादपद्मः
श्रीशङ्करस्तापमपाकरोतु ॥

(३०)

स्तोत्रं महेशचरणप्रवणप्रबोधा-
नन्देन निर्मितमिदं यमिना नराणाम् ।
एणाङ्कखण्डशिखराङ्घ्रिसरोजचिन्ता-
सन्तानपूतमनसां तनुतां प्रमोदम् ॥

इति १०८ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिप्रकाशानन्दपुरी-
विरचितं शिवाष्टमूर्तिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥



श्रीमेनकानन्दिनीस्तोत्रम् ४

(१)

गीर्वाणाखिलसम्पदम्बुजवनप्रोन्मूलनाकौतुकि-
प्रौढोन्मत्तकरीन्द्रसैरिभवधक्रीडाप्रसन्नानना ।
देवैराप्तमनोरथैरतिगतक्लेशैर्मुहुर्वन्दिता
विश्वत्राणपरायणा विजयते श्री मेनकानन्दिनी ॥

(२)

निःशेषामरवाहिनीकरिघटाशार्दूलविक्रीडित-
प्रौढाहंकृतिचण्डमुण्डहननेनाह्लादयन्ती सुरान् ।
भक्ताभीष्टविधानकल्पलतिका कारुण्यवाराम्निधिः
श्रीश्रीकण्ठगृहप्रभा विजयते श्रीमेनकानन्दिनी ॥

(३)

लीलोन्मूलितदानवारिनिकराखण्ड प्रतापोन्मदो-
द्गर्जच्छुम्भनिशुम्भदैत्यमृगयाहर्षस्मितास्याम्बुजा ।
इन्द्रोपेन्द्रसमर्चिताङ्घ्रिकमला बन्दारुचिन्तामणिः
श्रीमच्छम्भुकुटुम्बिनी विजयते श्रीमेनकानन्दिनी ॥

(४)

या शक्तिर्मधुकैटभादिहनने विष्णुं चकारास्पदं
गीर्वाणाधिपतिं निलिम्पबलभिद्वृत्रादिकोन्मूलने ।

देवद्रावणविश्रुतासुरवधे दैत्यारिसेनापतिं
सा बाधौघविनाशिनी विजयते श्रीमेनकानन्दिनी ॥

(५)

श्रद्धा तर्कवतां क्षमा बलवतां सम्पद्धतां नम्रता
शान्तिः सन्त्यजतां धृतिः प्रयततां भक्तिर्भवे जानताम् ।
यऽऽपन्नार्तिहरा हराभिलषिता तापत्रयोन्मूलिनी
सा सौभाग्यविधायिनी विजयते श्रीमेनकानन्दिनी ॥

(६)

यामाहुर्निगमाः सदादिवचनैः सृष्टेः पुरा केवलां
या चेतोऽतिगतप्रपञ्चरचनामन्यानपेक्षा व्यधात् ।
अन्ते स्वात्मनि सन्निवेश्य निखिलं तिष्ठत्यखिन्नप्रभा
सा प्रत्यक्चितिरच्युता विजयते श्रीमेनकानन्दिनी ॥

(७)

शैलेन्द्रजास्तवमिमं व्यदधात्प्रबोधा-
नन्दो गिरीन्द्रतनयाकरुणैकपात्रः ।
आनन्दसन्ततिमयं तनुतान्नराणां
गौरीपदाम्बुजमधुव्रतमानसानाम् ॥

इति १०८ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्वामिप्रकाशानन्दपुरी-
विरचितं श्रीमेनकानन्दिनीस्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीशिवनीराजनस्तोत्रम् ५

ॐ नमः शिवाय ।

जय गङ्गाधर हर शिव जय गिरिजाधीश
शिव जय गौरीनाथ त्वं मां पालय नित्यं
त्वं मां पालय शम्भो कृपया जगदीश ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥
(१)

पारिजातहरिचन्दनकल्पद्रुमनिचयैः शिव कल्प०
कुसुमितलतावितानै२र्गुञ्जद्भ्रमरमयैः ।
उन्मदकोकिलकूजितशिखिकेकारुचिरैः हर शिखि०
सहकारैश्च कदम्बै २ र्भृङ्गवधूमुखरैः ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥
(२)

मुदितहंसयुगखेलत्सारसपरिवारैः शिव सार०
भ्रमरयुवतिमुखराम्बुज २ सुभगैः कासारैः ।
हारिणि कलधौताद्रेर्देशे मणिरचिते हर देशे०
भवने सुखमासीनं २ चिन्तामणिनिचिते ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥
(३)

पीठे गिरिजासहितं चन्द्रकलाधवलं शिवमिन्दुक०
विशरणशरणं देवं २ विपत्त्रयप्रबलम् ।
सम्पद्विधानरसिकं जगदङ्कुरकन्दं हर जग०
प्रणमामो वयमीशं २ चित्परमानन्दम् ॥
ॐ हर ३ महादेव ॥

(४)

यस्याग्रेऽमरवध्वो विबुधाधिपसहिताः शिव विबु०
मुदितमनोहरवेषा २ लास्यकलामहिताः ।
ताथै ताथै तथेति विविधं नृत्यन्ति हर विविधं०
किङ्किणिनूपुरशिञ्जित २ रुचिरं वल्गन्ति ॥
ॐ हर ३ महादेव ॥

(५)

तांधिक धिनक्तिथथेति विविधं वादयते शिव विविधं०
मृदङ्गममरी काचित् २ रुचिरं नादयते ।
वीणां काचिद्रमणी गानविदाभरणा हर गान०
गायति कलमपराचित् २ चिन्तितहरचरणा ॥
ॐ हर ३ महादेव ॥

(६)

रमया सहितो विष्णुर्ब्रह्मा सावित्र्या शिव ब्रह्मा०

जिष्णुर्नृत्यति भक्त्या २ मुदितमनाः शच्या ।

तुम्बुरुरुचितं मुरजं विविधं वादयते हर विविधं०

नारदमुनिरपि वीणाँ २ महतीं नादयते ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

(७)

तं प्रसन्नवदनं प्रभुमिन्दुकलाभरणं शिवमिन्दु०

प्रणमामः करुणाब्धि २ तापत्रयहरणम् ।

देवासुरमणिमुकुटैर्नीराजितचरणं हर नीरा०

भक्ताभीष्टदकल्पं २ कातरजनशरणम् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

(८)

जटाकिरीटे गङ्गां चन्द्रकलां भाले शिवमिन्दुकलां०

नेत्रेष्विन्दुशिखीना २ नधरे स्मितममले ।

कण्ठे गरलं पाणौ वरमभयं शूलं हर वर०

पीयूषं कटिदेशे २ कृत्तिं च दुकूलम् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

(९)

श्रीगिरिराजकिशोरीमङ्के निदधानं शिवमङ्के०

निखिलसुरासुरमौलीन् २ चरणोऽमितदानम् ।

शम्भुं तडिदभिगौरं कृतनागाभरणं हर कृत०

भजति स गच्छति मुक्तिं २ तिमिरापाकरणम् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

(१०)

निरुपधिकरुणासिन्धुर्भीतत्राणपरः शिव भीत०

दुःखक्षतये भूयात् २ कातरबन्धुवरः ।

यः श्वेतं यमभीतं स्मृतमात्रोऽरक्षत् हर स्मृतमा०

मा भैषीरिति वादी २ कालं समतक्षत् ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

(११)

आनन्दाय महेशो युष्माकं भवतात् शिव युष्माकं०

जन्मजरामृतिशोकात् २ करुणानिधिरवतात् ।

येन सुरासुरनिवहस्त्रातो विषभीतो हर त्रातो०

नीलकण्ठ इति भूयो २ निगमगणैर्गीतः ॥

ॐ हर ३ महादेव ॥

(१२)

यः सृष्ट्यादिविधानं ब्रह्माच्युतरुद्रैः शिव ब्रह्मा०
निजरूपैस्तनुते यो २ दुर्ज्ञेयः क्षुद्रैः ।
तं प्रकाशसुखमच्छं बाधावधिमीशं हर बाधा०
तनुभेदैरिव भिन्नं २ श्रयत धियाभीशम् ॥
ॐ हर ३ महादेव ॥

(१३)

॥ ॐ शान्तिः ३ ॥

इति श्रीहृषीकेशकैलासनिवासिविद्वद्वरिष्ठब्रह्मनिष्ठपरमहंस-परिव्राजकाचार्य्य १०८ श्रीमत्स्वामिप्रकाशानन्दपुरी-भिर्विनिर्मितं शिवनीराजनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

ध्यानम् ६

वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत्कारणं
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्यशशाङ्कवह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियं
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥१

शान्तं पद्मासनस्थं शशिधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।
नागं पाशं च घण्टां डमरुकसहितां साङ्कुशां वामभागे
नानालङ्कारदीप्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥२

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदावसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥३

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥४

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥५

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा
श्रवणनयनजं वा मानसं वाऽपराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व
जयजय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥६

चन्द्रोद्भासितशेखरे स्मरहरे गङ्गाधरे शङ्करे
सर्पैर्भूषितकण्ठकर्णविवरे नेत्रोत्थवैश्वानरे ।
दन्तित्वक्कृतसुन्दराम्बरधरे त्रैलोक्यसारे हरे
मोक्षार्थं कुरु चित्तवृत्तिमचलामन्यैस्तु किं कर्मभिः ॥७

हरिः ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि ।
तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ॥

मन्त्रपुष्पाञ्जलिः ७

हरिः ॐ

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्र मूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥

(१)

विष्णुब्रह्मेन्द्रदेवै रजतगिरितटात्प्रार्थितो योऽवतीर्य
शाक्याद्युद्दामकण्ठीरवनखरकराघातसञ्जातमूर्च्छाम् ।
छन्दोधेनुं यतीन्द्रः प्रकृतिमगमयत्सूक्तिपीयूषवर्षैः
सोऽयं श्रीशङ्करार्यो भवदवदहनात्पातुलोकानजस्रम् ॥

(२)

पूर्णः पीयूषभानुर्भवमरुतपनोद्दामतापाकुलानां
प्रोढाज्ञानान्धकारावृतविषमपथभ्राम्यतामंशुमाली ।
कल्पः शाखी यतीनां विगतधनसुतादीषणानां सदा नः
पायाच्छ्रीपद्मपादादिमम्रुनिसहितः श्रीमदाचार्यवर्यः ॥

(३)

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥

(४)

नारायणं पद्मभवं वसिष्ठं शक्तिं च तत्पुत्रपराशरं च ।
व्यासं शुकं गौडपदं महान्तं गोविन्दयोगीन्द्रमथास्यशिष्यम् ॥
श्रीशङ्कराचार्यमथास्य पद्मपादं च हस्तामलकं च शिष्यम् ।
तं तोटकं वार्तिककारमन्यानस्मद्गुरून्संततमानतोऽस्मि ॥

(५)

विश्वं दर्पणदृश्यमाननगरीतुल्यं निजान्तर्गतं
पश्यन्नात्मनि मायया बहिरिवोद्भूतं यथा निद्रया ।
यः साक्षात्कुरुते प्रबोधसमये स्वात्मानमेवाद्वयं
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये ॥

(६)

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(७)

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(८)

श्रुतिस्मृतिपुराणानामालयं करुणालयम् ।
नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥

(९)

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम् ।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः ॥१०॥

ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्त्तिभेदविभागिने ।
व्योमवद्व्याप्तदेहाय दक्षिणामूर्तये नमः ॥११॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥
(१२)

राजाधिराजाय प्रसह्यसाहिने नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे ।
(१३)

स मे कामान् कामकामाय मह्यम् । कामेश्वरो वैश्रवणोददातु ॥
(१४)

कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥
(१५)

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमि जनयन् देव एकः ॥
(१६)

हरिः ॐतत्सत्-मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि — नानासुगन्ध-पुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च । भक्त्या दत्तानि पूजार्थं-गृहाण परमेश्वर ॥ १७ ॥

शिवनामावलिः ८

महादेव शिव शङ्कर शम्भो उमाकान्त हर त्रिपुरारे, मृत्युञ्जय वृषभध्वज शूलिन् गङ्गाधर मृड मदनारे ॥ हर शिव शङ्कर गौरीशं वन्दे गङ्गाधरमीशम्, रुद्रं पशुपतिमीशानं कलये काशीपुरनाथं ॥ जय शम्भो, जय शम्भो, शिवगौरी-शङ्कर जय शम्भो, जय शम्भो, जय शम्भो, शिव गौरी शङ्कर जय शम्भो ॥

शिव शिवेति शिवेति शिवेति वा हर हरेति हरेति हरेति वा ॥ भव भवेति भवेति भवेति वा मृड मृडेति मृडेति मृडेति वा ॥ भज मनः शिवमेव निरन्तरम् ॥

श्रीमहिम्नः स्तोत्रम् ९

गजाननं भूतगणाधिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ।१।

श्रीपुष्पदन्त उवाच

(१)

महिम्नः पारं ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधिगृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥

(२)

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतव्द्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥

(३)

मधुस्फीता वाचः परममम़ृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन्पुरमथनबुद्धिर्व्यवसिता ॥

(४)

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयीवस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन्वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥

(५)

किमीहः किंकायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन्मुखरयति मोहाय जगतः ॥

(६)

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥

(७)

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

(८)

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं दधति तु भवद्भ्रू प्रणिहितां
नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥

(९)

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्याध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन्पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥

(१०)

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरिञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कन्धवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥

(११)

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।
शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥

(१२)

अमुष्य त्वत्सेवासमधिगतसारं भुजवनं
बलात्कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद् ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥

(१३)

यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे बाणः परिजनविधेयत्रिभुवनः ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरि त्वच्चरणयो-
र्न कस्या उन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥

(१४)

अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा-
विधेयस्यासीद् यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः॥

(१५)

असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वशिषु पथ्यः परिभवः॥

(१६)

महीपादाघाताद् व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम्।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता॥

(१७)

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिम दिव्यं तव वपुः॥

(१८)

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्राकौं रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥

(१९)

हरिस्ते साहस्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥

(२०)

क्रतौ सुप्ते जाग्रत् त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥

(२१)

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥

(२२)

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।
धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममुं
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥

(२३)

स्वलावण्याशंसा धृतधनुषमह्नाय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरत देहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा बत वरद मुग्धा युवतयः ॥

(२४)

श्मशानेष्वाक्रीडा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्रगपि नृकरोटीपरिकरः ॥
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तॄणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥

(२५)

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्सङ्गितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्ज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत् किल भवान् ॥

(२६)

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रतु गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह तु यत्त्वं न भवसि ॥

(२७)

त्रयीं तिस्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा-
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणात्योमिति पदम् ॥

(२८)

भवः शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सहमहां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।
अमुष्मिन् प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥

(२९)

नमो नेदिष्ठाय प्रियदव दविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमितिसर्वाय च नमः ॥

(३०)

बहलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोद्रिक्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥

(३१)

कृशपरिणतिचेतः क्लेशवश्यं क्वचेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥

(३२)

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

(३३)

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥

(३४)

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रूद्रतुल्यस्तथाऽत्र
प्रचुरतरधनायुःपुत्रवान्कीर्तिमांश्च ॥

(३५)

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तव पाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

(३६)

आसमाप्तमिदं स्तोत्रं पुण्यं गन्धर्वभाषितम् ।
अनौपम्यं मनोहारि शिवमीश्वरवर्णनम् ॥

(३७)

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मन्त्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥

(३८)

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शशिधरवरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥

(३९)

सुरवरमुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥

(४०)

श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥

(४१)

इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छङ्करपादयोः ।
अर्पिता तेन देवेशः प्रीयतां मे सदाशिवः ॥

इति श्रीपुष्पदन्ताचार्यविरचितं महिम्नः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

यदक्षरं पदं भ्रष्टं मात्राहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव प्रसीद परमेश्वर ॥

हरि ॐ

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

श्रीहृषीकेशकैलासाश्रमप्रतिष्ठापकभगवत्पूज्यपाद
१०८ श्रीमत्स्वामिधनराजगिरीणामन्तिमोपदेशः ।

श्री गणेशाय नमः ।

संसारोग्रदवप्रतापविहतौ पीयूषभानोः करा
अज्ञानान्धतमोपसारणविधौ मार्तण्डचण्डांशवः ।
येषां सूक्तय आश्रिताशिवहरास्तान्ब्रह्मनिष्ठान्गुरून्
भक्त्या श्रीधनराजगिर्यभिधया ख्यातान्नमामो वयम् ॥१

अश्वाङ्गग्रहभूमिविक्रमशरन्मासे तपस्येऽसिते
पक्षे रुद्रतिथौ भृगावुपदिशञ्छिष्यानखण्डाद्वयम् ।
तत्त्वं श्रीधनराजगिर्यभिधया ख्यातो विदामग्रणी-
र्वैदेहं सुखमन्वभूदहिरिव त्यक्त्वा शरीरं त्वचम् ॥२

अयं किल महानुभावः करतलामलकीकृतात्मतत्त्व आसन्न-कलालयकाल उपनमन्निजवियोगभावनाकुलविनेयवर्गमुपा-सीनवमलोक्य सञ्जातकरुणोऽन्तिममिममुपदेशमकरोत् । किं मां मरणधर्माणमाकलयन्ति भवन्तः । यस्य मम 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणः' इत्येवमादीनि भगवद्वचांसि जन्मादिकमपाकुर्वन्ति का नाम तस्य मरणवार्ता । अपिच सच्चिदानन्दस्वरूपे कूटस्थसाक्षिणि निखिलकल्पनाधिष्ठाने प्राणादीनामपि प्राणे मय्यपगते को नाम सत्तास्फूर्तिमान् भवेदिति शून्यवाद एवापद्येत ।

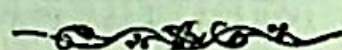
कथमिव च सोऽपि साक्षिणं मामनाश्रित्यानुभवपथमारोहेत्। किञ्चाजातवादाध्यायिषु भवत्स्वकाण्ड एवायं शोकसञ्चारो यतो 'न कश्चिज्जायते जीवः' इत्यादीन्यजातवादसूक्तानि प्रत्यगात्मनो मम जन्माभावमवबोधयन्ति मरणाभाव-मप्यावेदयन्त्येव। अन्यच्च शरीरवियोगानुसन्धानमनूद्भ-वन्तं शोकपङ्कं 'यथा काष्ठं च काष्ठं च', 'यथा प्रपायां बहवो मिलन्ते' इत्यादिसुभाषितामृतैः सङ्क्षालयन्ति सुधियः। 'आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा' 'न निरोधो न चोत्पत्ति' रित्यादिसूक्त्युन्मूलितमूलस्य च सर्वथाऽनवसर एव शोकस्य। 'अपागादग्नेरग्नित्वमि' त्येवं-विधाभिरपौरुषेयीभिर्वाग्भिरनन्यत्वं कारणात्कार्य्यस्यावे-दयन्तीभिः प्रत्यगात्मनः सद्रूपाधिष्ठानान्मत्तः शरीरादिक-मनन्यमाकलयतां च भवतां का नाम शोककलनेति। पुन-श्चोक्तविधोपदेशसुधाधाराक्षालितशोकपङ्कमाह्लादमानमन्तेवासि-मण्डलमीक्षमाणो मुदितमनाः प्रश्नोपनिषदि सुषुप्तिमधिकृत्य 'पृथिवी च पृथिवीमात्रा चे' त्यादिनाऽविद्याप्रत्युपस्था-पितोपाधिविलयात् सम्भावितं निर्विशेषं शिवं शान्तमद्वैतमक्षरमह-मिदानीं क्षपितारब्धकर्मा प्रविलीनकलो 'ब्रह्मैव सन्ब्रह्माप्येमी' त्युक्त्वोपारमत।

इममन्तिमोपदेशं पूर्णानंदगिर्याद्यनुचरप्रार्थितपरमहंसपरिव्राजका-चार्य १०८ श्रीमत्स्वामिगोविन्दानन्दगिरीतिशुभाभिधेयाः सङ्कलित-वन्तः॥

(१)

यत्कारुण्यलवाद्विनेयनिवहा जाड्यं व्यापोह्याद्वयं
ब्रह्मानन्दमशेषवेदविदितं विज्ञाय पारंगताः ।
संसाराम्बुनिधेः कृपापरवशांस्तान्सद्गुरून् श्रीज्यगो-
विन्दानन्दयतीश्वराननुदिनं भक्त्या नमस्कुर्महे ॥

निवेदकः—श्रीहृषीकेशकैलासाश्रमप्रतिष्ठापकभगवत्पूज्यपाद
१०८ श्रीमत्स्वामिधनराजगिरिकृपापात्र-पूर्णानन्दगिरिः ।



१०८ श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकार्य स्वामी धनराजगिरिजी महाराजके शिष्यवर्गके प्रति अन्तिम उपदेशका भाषानुवाद

॥ कवित्त ॥

उन्नीसै सतासठ शरत् वदि फागन में
भृगुवार ग्यारस पुनीत आदियाम में ।
श्रीश धनराजगिरि वेदन के पारगामि
देह कों तियाग के समाये निजधाममें ॥

हृषीकेशबीच गङ्गातीर पर शोभमान
आश्रम मनोहर कैलास शुभनाम में ।
भवदवदारुणदहन दुखिजननकों
निजदृष्टिसुधा से जो करत आराम में ॥१॥

शरीरत्याग के समयसे तीनघण्टा प्रथम स्वामीजी महाराज को कुछकालतक किञ्चित् मूर्छा सी होगई थी। उस समयमें उनके समीप बैठी हुई शिष्यमण्डलीमें शोक छा गया । किसीके नेत्रोंसे अश्रुपात होनेलगा, कोई नाड़ी देखने लगा तथा कोई उनके उदर पर हाथ धरकर शीतोष्णता जाचने लगा, कोई शोकवार्ता में संलग्न हुआ । ऐसी ही अवस्था में स्वामीजी महाराज सावधान होकर स्वतिकासन लगाकर बैठ गए और शिष्यवर्गके प्रति कहने लगे—क्या आप हमारे को मरने वाला समझते हैं ? आप विचार कर देखिए कि जब भगवान् श्रीकृष्णदेव श्रीमुख से 'अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणः' इत्यादि वचनों द्वारा प्रत्यगात्माके जन्ममरणादिकों का अभाव कथन करते हैं, तब प्रत्यगभिन्न मेरे स्वरूप का मरण समझना सर्वथा अनुचित है। और सच्चिदानन्द कूटस्थ साक्षी सर्वाधिष्ठान

निखिल अनात्मवर्गको सत्तास्फूर्ति देनेवाला मैं भी जब मरनेवाला होऊं तब किसी भी वस्तु की प्रतीति नहीं हो सकेगी। अधिष्ठानस्वरूप मेरे बिना सर्व जगत को गगन-कुसुमसमान होनेसे शून्यवाद का प्रसङ्ग हो जावेगा। और 'न कश्चिज्जायते जीवः' इत्यादि वाक्योंसे आचार्योंने भी प्रत्यगात्माके जन्मादिकों का अभाव ही बोधन किया है। तब आपलोगों को तन्निमित्तक शोक करना सर्वथा अयोग्य है। और शरीरवियोगप्रयुक्तशोक करना भी आप लोगोंको सर्वथा उचित नहीं है। क्योंकि जैसे समुद्र में जल के वेगसे अनेक काष्ठ कभी इकट्ठे हो जाते हैं फिर कभी जलके वेगसे ही पृथक् २ हो जाते हैं वैसे ही प्रारब्ध वेगसे कदाचित् इन शरीरों का संयोग हो जाता है पुनः कदाचित् प्रारब्धवेगसे ही वियोग हो जाता है। ऐसे अवश्यंभावि संयोग वियोग को निश्चय करके विवेकी पुरुष शोकांकुरका उन्मूलन कर देते हैं। और अद्वैत के उपदेश करने वाले जो आचार्य्य हैं उनका तो यह उपदेश है कि शरीरादिप्रपञ्च प्रथम नहीं था तथा अन्तमें भी नहीं होगा, मध्यमें जो प्रतीत होता है सो भी आकाश में

नीलता के समान अनहुआ ही प्रतीत होता है। ऐसा अजातवाद के उपदेशों का पठनपाठन करने वाले आप लोगोंको शरीरवियोगनिमित्त शोक करना सर्वथा अनुचित है। क्या कोई स्वप्नके बन्धुजन का जाग्रत में वियोग देखकर शोक करता है–इत्यादि स्वामीजी महाराज के उपदेशों को श्रवण करके और ऐसे समय में उनके उत्साह और सावधानताको देखकर सर्वशिष्यवर्गके मुख और मन प्रफुल्लित होगये। इसके अनन्तर स्वामीजी महाराजने कहा–अब हम प्रारब्ध क्षय और कलालयपूर्वक विदेह कैवल्य को प्राप्त होते हैं—ऐसा कह कर तूष्णीं भाव को अवलम्बन करके निज स्वरूप में सुप्रतिष्ठित हो गये। इति ॥

निवेदक :—श्रीहृषीकेशकैलासाश्रमप्रतिष्ठापक भगवत्पूज्यपाद १०८ श्रीमत्स्वामिधनराजगिरिकृपापात्र–पूर्णानन्दगिरिः ॥

प्रकाशकः—

श्री कैलासाश्रमाध्यक्षः

पोस्ट – ऋषिकेश

(देहरादून) उ०प्र०

ग्रन्थोऽयं ऋषिकेशस्थ–

श्री नारायण मुद्रणालये मुद्रितः ।

कैलासाधिपतिं वन्दे भक्तारिष्टहरं हरम् ।
गौरीविनायकोपेतं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥

मङ्गलं दिशतु वो गणेश्वरो

मङ्गलं दिशतु वः सदा गुरुः



मङ्गलं दिशतु वो महेश्वरी

मङ्गलं दिशतु वो महेश्वरो





BHUJANGASTOTRAS.

SRI VANI VILAS PRESS, SRIRANGAM.

॥ श्रीः ॥

॥ भुजंगस्तोत्राणि ॥

श्रीमच्छंकरभगवत्पादैः

विरचितानि ।



श्रीरङ्गम्

श्रीवाणीविलासमुद्रायन्त्रालयः ।

१९११.

श्री समर्थस्वामी

विष्णुब्रह्मचारिणे उपहारीकृतोऽयं ग्रन्थः

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा १९७६

॥ श्रीः ॥

॥ सुब्रह्मण्यभुजंगम् ॥

सदा बालरूपापि विघ्नाद्रिहन्त्री
महादन्तिवक्त्रापि पञ्चास्यमान्या ।
विधीन्द्रादिमृग्या गणेशाभिधा मे
विधत्तां श्रियं कापि कल्याणमूर्तिः ॥ १ ॥

न जानामि शब्दं न जानामि चार्थं
न जानामि पद्यं न जानामि गद्यम् ।
चिदेका षडास्या हृदि द्योतते मे
मुखान्निःसरन्ते गिरश्चापि चित्रम् ॥ २ ॥

मयूराधिरूढं महावाक्यगूढं
मनोहारिदेहं महच्चित्तगेहम् ।
महीदेवदेवं महावेदभावं
महादेवबालं भजे लोकपालम् ॥ ३ ॥

यदा संनिधानं गता मानवा मे
भवाम्भोधिपारं गतास्ते तदैव ।
इति व्यञ्जयन्सिन्धुतीरे य आस्ते
तमीडे पवित्रं पराशक्तिपुत्रम् ॥ ४ ॥

यथाब्धेस्तरङ्गा लयं यान्ति तुङ्गा-
स्तथैवापदः संनिधौ सेवतां मे ।
इतीवोर्मिपङ्क्तीर्नृणां दर्शयन्तं
सदा भावये हृत्सरोजे गुहं तम् ॥ ५ ॥

गिरौ मन्निवासे नरा येऽधिरूढा-
स्तदा पर्वते राजते तेऽधिरूढाः ।
इतीव ब्रुवन्गन्धशैलाधिरूढः
स देवो मुदे मे सदा षण्मुखोऽस्तु ॥ ६ ॥

महाम्भोधितीरे महापापचोरे
मुनीन्द्रानुकूले सुगन्धाख्यशैले ।
गुहायां वसन्तं स्वभासा लसन्तं
जनार्तिं हरन्तं श्रयामो गुहं तम् ॥ ७ ॥

लसत्स्वर्णगेहे नृणां कामदोहे
सुमस्तोमसंछन्नमाणिक्यमञ्चे ।
समुद्यत्सहस्रार्कतुल्यप्रकाशं
सदा भावये कार्तिकेयं सुरेशम् ॥ ८ ॥

रणद्धंसके मञ्जुलेऽत्यन्तशोणे
मनोहारिलावण्यपीयूषपूर्णे ।
मनःषट्पदो मे भवक्लेशतप्तः
सदा मोदतां स्कन्द ते पादपद्मे ॥ ९ ॥

सुवर्णाभदिव्याम्बरैर्भासमानां
क्वणत्किङ्किणीमेखलाशोभमानाम् ।
लसद्धेमपट्टेन विद्योतमानां
कटिं भावये स्कन्द ते दीप्यमानाम् ॥ १० ॥

पुलिन्देशकन्याघनाभोगतुङ्ग-
स्तनालिङ्गनासक्तकाश्मीररागम् ।
नमस्याम्यहं तारकारे तवोरः
स्वभक्तावने सर्वदा सानुरागम् ॥ ११ ॥

विधौ क्लृप्तदण्डान्स्वलीलाधृताण्डा-
निरस्तेभशुण्डान्द्विषत्कालदण्डान् ।
हतेन्द्रारिषण्डाञ्जगत्राणशौण्डा-
न्सदा ते प्रचण्डाञ्श्रये बाहुदण्डान् ॥ १२ ॥

सदा शारदाः षण्मृगाङ्का यदि स्युः
समुद्यन्त एव स्थिताश्चेत्समन्तात् ।
सदा पूर्णबिम्बाः कलङ्कैश्च हीना-
स्तदा त्वन्मुखानां ब्रुवे स्कन्द साम्यम् ॥ १३ ॥

स्फुरन्मन्दहासैः सहंसानि चञ्च-
त्कटाक्षावलीभृङ्गसंघोज्ज्वलानि ।
सुधास्यन्दिबिम्बाधराणीशसूनो
तवालोकये षण्मुखाम्भोरुहाणि ॥ १४ ॥

विशालेषु कर्णान्तदीर्घेष्वजस्रं
दयास्यन्दिषु द्वादशस्वीक्षणेषु ।
मयीषत्कटाक्षः सकृत्पातितश्चे-
द्भवेत्ते दयाशील का नाम हानिः ॥ १५ ॥

सुताङ्गोद्भवो मेऽसि जीवेति षड्धा
जपन्मन्त्रमीशो मुदा जिघ्रते यान् ।
जगद्भारभृद्भ्यो जगन्नाथ तेभ्यः
किरीटोज्ज्वलेभ्यो नमो मस्तकेभ्यः ॥ १६ ॥

स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिराम-
श्चलत्कुण्डलश्रीलसद्गण्डभागः ।
कटौ पीतवासाः करे चारुशक्तिः
पुरस्तान्ममास्तां पुरारेस्तनूजः ॥ १७ ॥

इहायाहि वत्सेति हस्तान्प्रसार्या-
ह्वयत्यादराच्छंकरे मातुरङ्कात् ।
समुत्पत्य तातं श्रयन्तं कुमारं
हराश्लिष्टगात्रं भजे बालमूर्तिम् ॥ १८ ॥

कुमारेशसूनो गुह स्कन्द सेना-
पते शक्तिपाणे मयूराधिरूढ ।
पुलिन्दात्मजाकान्त भक्तार्तिहारिन्
प्रभो तारकारे सदा रक्ष मां त्वम् ॥ १९ ॥

प्रशान्तेन्द्रिये नष्टसंज्ञे विचेष्टे
कफोद्गारिवक्त्रे भयोत्कम्पिगात्रे ।
प्रयाणोन्मुखे मय्यनाथे तदानीं
द्रुतं मे दयालो भवाग्रे गुह त्वम् ॥ २० ॥

कृतान्तस्य दूतेषु चण्डेषु कोपा-
द्दह च्छिन्द्धि भिन्द्धीति मां तर्जयत्सु ।
मयूरं समारुह्य मा भैरिति त्वं
पुरः शक्तिपाणिर्ममायाहि शीघ्रम् ॥ २१ ॥

प्रणम्यासकृत्पादयोस्ते पतित्वा
प्रसाद्य प्रभो प्रार्थयेऽनेकवारम् ।
न वक्तुं क्षमोऽहं तदानीं कृपाब्धे
न कार्यान्तकाले मनागप्युपेक्षा ॥ २२ ॥

सहस्राण्डभोक्ता त्वया शूरनामा
हतस्तारकः सिंहवक्त्रश्च दैत्यः ।
ममान्तर्हृदिस्थं मनःक्लेशमेकं
न हंसि प्रभो किं करोमि क्व यामि ॥ २३ ॥

अहं सर्वदा दुःखभारावसन्नो
भवान्दीनबन्धुस्त्वदन्यं न याचे ।
भवद्भक्तिरोधं सदा क्लृप्तबाधं
ममाधिं द्रुतं नाशयोमासुत त्वम् ॥ २४ ॥

अपस्मारकुष्ठक्षयार्शःप्रमेह-
ज्वरोन्मादगुल्मादिरोगा महान्तः ।
पिशाचाश्च सर्वे भवत्पत्रभूतिं
विलोक्य क्षणात्तारकारे द्रवन्ते ॥ २५ ॥

दृशि स्कन्दमूर्तिः श्रुतौ स्कन्दकीर्ति-
र्मुखे मे पवित्रं सदा तच्चरित्रम् ।
करे तस्य कृत्यं वपुस्तस्य भृत्यं
गृहे सन्तु लीना ममाशेषभावाः ॥ २६ ॥

मुनीनामुताहो नृणां भक्तिभाजा-
मभीष्टप्रदाः सन्ति सर्वत्र देवाः ।
नृणामन्त्यजानामपि स्वार्थदाने
गुहाद्देवमन्यं न जाने न जाने ॥ २७ ॥

कलत्रं सुता बन्धुवर्गः पशुर्वा
नरो वाथ नारी गृहे ये मदीयाः ।
यजन्तो नमन्तः स्तुवन्तो भवन्तं
स्मरन्तश्च ते सन्तु सर्वे कुमार ॥ २८ ॥

मृगाः पक्षिणो दंशका ये च दुष्टा-
स्तथा व्याधयो बाधका ये मदङ्गे ।
भवच्छक्तितीक्ष्णाग्रभिन्नाः सुदूरे
विनश्यन्तु ते चूर्णितक्रौञ्चशैल ॥ २९ ॥

जनित्री पिता च स्वपुत्रापराधं
सहेते न किं देवसेनाधिनाथ ।
अहं चातिबालो भवान् लोकतातः
क्षमस्वापराधं समस्तं महेश ॥ ३० ॥

नमः केकिने शक्तये चापि तुभ्यं
नमश्छाग तुभ्यं नमः कुक्कुटाय ।
नमः सिन्धवे सिन्धुदेशाय तुभ्यं
पुनः स्कन्दमूर्ते नमस्ते नमोऽस्तु ॥ ३१ ॥

जयानन्दभूमञ्जयापारधाम-
ञ्जयामोघकीर्ते जयानन्दमूर्ते ।
जयानन्दसिन्धो जयाशेषबन्धो
जय त्वं सदा मुक्तिदानेशसूनो ॥ ३२ ॥

भुजंगाख्यवृत्तेन क्लृप्तं स्तवं यः
पठेद्भक्तियुक्तो गुहं संप्रणम्य ।
स पुत्रान्कलत्रं धनं दीर्घमायु-
र्लभेत्स्कन्दसायुज्यमन्ते नरः सः ॥ ३३ ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य
श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य
श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ
श्रीसुब्रह्मण्यभुजंगं संपूर्णम् ॥



॥ श्रीः ॥

॥ शिवभुजंगम् ॥

गलद्दानगण्डं मिलद्भृङ्गषण्डं
चलच्चारुशुण्डं जगत्त्राणशौण्डम् ।
कनद्दन्तकाण्डं विपद्भङ्गचण्डं
शिवप्रेमपिण्डं भजे वक्रतुण्डम् ॥ १ ॥

अनाद्यन्तमाद्यं परं तत्त्वमर्थं
चिदाकारमेकं तुरीयं त्वमेयम् ।
हरिब्रह्ममृग्यं परब्रह्मरूपं
मनोवागतीतं महःशैवमीडे ॥ २ ॥

स्वशक्त्यादिशक्त्यन्तसिंहासनस्थं
मनोहारिसर्वाङ्गरत्नोरुभूषम् ।
जटाहीन्दुगङ्गास्थिशम्याकमौलिं
पराशक्तिमित्रं नुमः पञ्चवक्त्रम् ॥ ३ ॥

शिवेशानतत्पूरुषाघोरवामा-
दिभिः पञ्चभिर्हृन्मुखैः षड्भिरङ्गैः ।
अनौपम्य षट्त्रिंशतं तत्त्वविद्या-
मतीतं परं त्वां कथं वेत्ति को वा ॥ ४ ॥

प्रवालप्रवाहप्रभाशोणमर्धं
मरुत्वन्मणिश्रीमहःश्याममर्धम् ।
गुणस्यूतमेतद्वपुः शैवमन्तः
स्मरामि स्मरापत्तिसंपत्तिहेतोः ॥ ५ ॥

स्वसेवासमायातदेवासुरेन्द्रा-
नमन्मौलिमन्दारमालाभिषक्तम् ।
नमस्यामि शंभो पदाम्भोरुहं ते
भवाम्भोधिपोतं भवानीविभाव्यम् ॥ ६ ॥

जगन्नाथ मन्नाथ गौरीसनाथ
प्रपन्नानुकम्पिन्विपन्नार्तिहारिन् ।
महःस्तोममूर्ते समस्तैकबन्धो
नमस्ते नमस्ते पुनस्ते नमोऽस्तु ॥ ७ ॥

विरूपाक्ष विश्वेश विश्वादिदेव
त्रयीमूल शंभो शिव त्र्यम्बक त्वम् ।
प्रसीद स्मर त्राहि पश्यावमुक्त्यै
क्षमां प्राप्नुहि त्र्यक्ष मां रक्ष मोदात् ॥ ८ ॥

महादेव देवेश देवादिदेव
स्मरारे पुरारे यमारे हरेति ।
ब्रुवाणः स्मरिष्यामि भक्त्या भवन्तं
ततो मे दयाशील देव प्रसीद ॥ ९ ॥

त्वदन्यः शरण्यः प्रपन्नस्य नेति
प्रसीद स्मरन्नेव हन्यास्तु दैन्यम् ।
न चेत्ते भवेद्भक्तवात्सल्यहानि-
स्ततो मे दयालो सदा संनिधेहि ॥ १० ॥

अयं दानकालस्त्वहं दानपात्रं
भवानेव दाता त्वदन्यं न याचे ।
भवद्भक्तिमेव स्थिरां देहि मह्यं
कृपाशील शंभो कृतार्थोऽस्मि तस्मात् ॥ ११ ॥

पशुं वेत्सि चेन्मां तमेवाधिरूढः
कलङ्कीति वा मूर्ध्नि धत्से तमेव ।
द्विजिह्वः पुनः सोऽपि ते कण्ठभूषा
त्वदङ्गीकृताः शर्व सर्वेऽपि धन्याः ॥ १२ ॥

न शक्नोमि कर्तुं परद्रोहलेशं
कथं प्रीयसे त्वं न जाने गिरीश ।
तथाहि प्रसन्नोऽसि कस्यापि कान्ता-
सुतद्रोहिणो वा पितृद्रोहिणो वा ॥ १३ ॥

स्तुतिं ध्यानमर्चां यथावद्विधातुं
भजन्नप्यजानन्महेशावलम्बे ।
त्रसन्तं सुतं त्रातुमग्रे मृकण्डो-
र्यमप्राणनिर्वापणं त्वत्पदाब्जम् ॥ १४ ॥

शिरोदृष्टिहृद्रोगशूलप्रमेह-
ज्वरार्शोजरायक्ष्महिक्काविषार्तान् ।
त्वमाद्यो भिषग्भेषजं भस्म शंभो
त्वमुल्लाघयास्मान्वपुर्लाघवाय ॥ १५ ॥

दरिद्रोऽस्म्यभद्रोऽस्मि भग्नोऽस्मि दूये
विषण्णोऽस्मि सन्नोऽस्मि खिन्नोऽस्मि चाहम् ।
भवान्प्राणिनामन्तरात्मासि शंभो
ममाधिं न वेत्सि प्रभो रक्ष मां त्वम् ॥ १६ ॥

त्वदक्ष्णोः कटाक्षः पतेत्त्र्यक्ष यत्र
क्षणं क्ष्मा च लक्ष्मीः स्वयं तं वृणाते ।
किरीटस्फुरच्चामरच्छत्रमाला-
कलाचीगजक्षौमभूषाविशेषैः ॥ १७ ॥

भवान्यै भवायापि मात्रे च पित्रे
मृडान्यै मृडायाप्यघघ्न्यै मखघ्ने ।
शिवाङ्ग्यै शिवाङ्गाय कुर्मः शिवायै
शिवायाम्बिकायै नमस्त्र्यम्बकाय ॥ १८ ॥

भवद्गौरवं मल्लघुत्वं विदित्वा
प्रभो रक्ष कारुण्यदृष्ट्यानुगं माम् ।
शिवात्मानुभावस्तुतावक्षमोऽहं
स्वशक्त्या कृतं मेऽपराधं क्षमस्व ॥ १९ ॥

यदा कर्णरन्ध्रं व्रजेत्कालवाह-
द्विषत्कण्ठघण्टाघणात्कारनादः ।
वृषाधीशमारुह्य देवौपवाह्यं
तदा वत्स मा भीरिति प्रीणय त्वम् ॥ २० ॥

यदा दारुणाभाषणा भीषणा मे
भविष्यन्त्युपान्ते कृतान्तस्य दूताः ।
तदा मन्मनस्त्वत्पदाम्भोरुहस्थं
कथं निश्चलं स्यान्नमस्तेऽस्तु शंभो ॥ २१ ॥

यदा दुर्निवारव्यथोऽहं शयानो
लुठन्निःश्वसन्निःसृताव्यक्तवाणिः ।
तदा जह्नुकन्याजलालंकृतं ते
जटामण्डलं मन्मनोमन्दिरं स्यात् ॥ २२ ॥

यदा पुत्रमित्रादयो मत्सकाशे
रुदन्त्यस्य हा कीदृशीयं दशेति ।
तदा देवदेवेश गौरीश शंभो
नमस्ते शिवायेत्यजस्रं ब्रवाणि ॥ २३ ॥

यदा पश्यतां मामसौ वेत्ति नास्मा-
नयं श्वास एवेति वाचो भवेयुः ।
तदा भूतिभूषं भुजंगावनद्धं
पुरारे भवन्तं स्फुटं भावयेयम् ॥ २४ ॥

यदा यातनादेहसंदेहवाही
भवेदात्मदेहे न मोहो महान्मे ।
तदा काशशीतांशुसंकाशमीश
स्मरारे वपुस्ते नमस्ते स्मराणि ॥ २५ ॥

यदापारमच्छायमस्थानमद्भि-
र्जनैर्वा विहीनं गमिष्यामि मार्गम् ।
तदा तं निरुन्धन्कृतान्तस्य मार्गं
महादेव मह्यं मनोज्ञं प्रयच्छ ॥ २६ ॥

यदा रौरवादि स्मरन्नेव भीत्या
व्रजाम्यत्र मोहं महादेव घोरम् ।
तदा मामहो नाथ कस्तारयिष्य-
त्यनाथं पराधीनमर्धेन्दुमौले ॥ २७ ॥

यदा श्वेतपत्रायतालङ्घ्यशक्तेः
कृतान्ताद्भयं भक्तवात्सल्यभावात् ।
तदा पाहि मां पार्वतीवल्लभान्यं
न पश्यामि पातारमेतादृशं मे ॥ २८ ॥

इदानीमिदानीं मृतिर्मे भवित्री-
त्यहो संततं चिन्तया पीडितोऽस्मि ।
कथं नाम मा भून्मृतौ भीतिरेषा
नमस्तेऽगतीनां गते नीलकण्ठ ॥ २९ ॥

अमर्यादमेवाहमाबालवृद्धं
हरन्तं कृतान्तं समीक्ष्यास्मि भीतः ।
मृतौ तावकाङ्घ्र्यब्जदिव्यप्रसादा-
द्भवानीपते निर्भयोऽहं भवानि ॥ ३० ॥

जराजन्मगर्भाधिवासादिदुःखा-
न्यसह्यानि जह्यां जगन्नाथ देव ।
भवन्तं विना मे गतिर्नैव शंभो
दयालो न जागर्ति किं वा दया ते ॥ ३१ ॥

शिवायेति शब्दो नमः पूर्व एष
स्मरन्मुक्तिकृन्मृत्युहा तत्त्ववाची ।
महेशान मा गान्मनस्तो वचस्तः
सदा मह्यमेतत्प्रदानं प्रयच्छ ॥ ३२ ॥

त्वमप्यम्ब मां पश्य शीतांशुमौलि-
प्रिये भेषजं त्वं भवव्याधिशान्तौ ।
बहुक्लेशभाजं पदाम्भोजपोते
भवाब्धौ निमग्नं नयस्वाद्य पारम् ॥ ३३ ॥

अनुद्यल्ललाटाक्षिवह्निप्ररोहै-
रवामस्फुरच्चारुवामोरुशोभैः ।
अनङ्गभ्रमद्भोगिभूषाविशेषै-
रचन्द्रार्धचूडैरलं दैवतैर्नः ॥ ३४ ॥

अकण्ठेकलङ्कादनङ्गेभुजङ्गा-
दपाणौकपालादफालेऽनलाक्षात् ।
अमौलौशशाङ्कादवामेकलत्रा
दहं देवमन्यं न मन्ये न मन्ये ॥ ३५ ॥

महादेव शंभो गिरीश त्रिशूलिं-
स्त्वयीदं समस्तं विभातीति यस्मात् ।
शिवादन्यथा दैवतं नाभिजाने
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥३६॥

यतोऽजायतेदं प्रपञ्चं विचित्रं
स्थितिं याति यस्मिन्यदेकान्तमन्ते ।
स कर्मादिहीनः स्वयंज्योतिरात्मा
शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥३७॥

किरीटे निशेशो ललाटे हुताशो
भुजे भोगिराजो गले कालिमा च ।
तनौ कामिनी यस्य तत्तुल्यदेवं
न जाने न जाने न जाने न जाने ॥ ३८ ॥

अनेन स्तवेनादरादम्बिकेशं
परां भक्तिमासाद्य यं ये नमन्ति ।
मृतौ निर्भयास्ते जनास्तं भजन्ते
हृदम्भोजमध्ये सदासीनमीशम् ॥ ३९ ॥

भुजंङ्गप्रियाकल्प शंभो मयैवं
भुजंगप्रयातेन वृत्तेन क्लृप्तम् ।
नरः स्तोत्रमेतत्पठित्वोरुभक्त्या
सुपुत्रायुरारोग्यमैश्वर्यमेति ॥ ४० ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यस्य
श्रीगोविन्दभगवत्पूज्यपादशिष्यस्य
श्रीमच्छंकरभगवतः कृतौ
शिवभुजंगं संपूर्णम् ॥



॥ श्रीः ॥

॥ देवीभुजंगम् ॥

विरिञ्च्यादिभिः पञ्चभिर्लोकपालैः
समूढे महानन्दपीठे निषण्णम ।
धनुर्बाणपाशाङ्कुशप्रोतहस्तं
महस्त्रैपुरं शंकराद्वैतमव्यात् ॥ १ ॥

यदन्नादिभिः पञ्चभिः कोशजालैः
शिरःपक्षपुच्छात्मकैरन्तरन्तः ।
निगूढे महायोगपीठे निषण्णं
पुरारेरथान्तःपुरं नौमि नित्यम् ॥ २ ॥

विरिञ्चादिरूपैः प्रपञ्चे विहृत्य
स्वतन्त्रा यदा स्वात्मविश्रान्तिरेषा ।
तदा मानमातृप्रमेयातिरिक्तं
परानन्दमीडे भवानि त्वदीयम ॥ ३ ॥

विनोदाय चैतन्यमेकं विभज्य
द्विधा देवि जीवः शिवश्चेति नाम्ना ।
शिवस्यापि जीवत्वमापादयन्ती
पुनर्जीवमेनं शिवं वा करोषि ॥ ४ ॥

समाकुञ्च्य मूलं हृदि न्यस्य वायुं
मनो भ्रूबिलं प्रापयित्वा निवृत्ताः ।
ततः सच्चिदानन्दरूपे पदे ते
भवन्त्यम्ब जीवाः शिवत्वेन केचित् ॥ ५ ॥

शरीरेऽतिकष्टे रिपौ पुत्रवर्गे
सदाभीतिमूले कलत्रे धने वा ।
न कश्चिद्विरज्यत्यहो देवि चित्तं
कथं त्वत्कटाक्षं विना तत्त्वबोधः ॥ ६ ॥

शरीरे धनेऽपत्यवर्गे कलत्रे
विरक्तस्य सद्देशिकादिष्टबुद्धेः ।
यदाकस्मिकं ज्योतिरानन्दरूपं
समाधौ भवेत्तत्त्वमस्यम्ब सत्यम् ॥ ७ ॥

मृषान्यो मृषान्यः परो मिश्रमेनं
परः प्राकृतं चापरो बुद्धिमात्रम् ।
प्रपञ्चं मिमीते मुनीनां गणोऽयं
तदेतत्त्वमेवेति न त्वां जहीमः ॥ ८ ॥

निवृत्तिः प्रतिष्ठा च विद्या च शान्ति-
स्तथा शान्त्यतीतेति पञ्चीकृताभिः ।
कलाभिः परे पञ्चविंशात्मिकाभि-
स्त्वमेकैव सेव्या शिवाभिन्नरूपा ॥ ९ ॥

अगाधेऽत्र संसारपङ्के निमग्नं
कलत्रादिभारेण खिन्नं नितान्तम् ।
महामोहपाशौघबद्धं चिरान्मां
समुद्धर्तुमम्ब त्वमेकैव शक्ता ॥ १० ॥

समारभ्य मूलं गतो ब्रह्मचक्रं
भवद्दिव्यचक्रेश्वरीधामभाजः ।
महासिद्धिसंघातकल्पद्रुमाभा-
नवाप्याम्ब नादानुपास्ते च योगी ॥ ११ ॥

गणेशैर्ग्रहैरम्ब नक्षत्रपङ्क्त्या
तथा योगिनीराशिपीठैरभिन्नम् ।
महाकालमात्मानमामृश्य लोकं
विधत्से कृतिं वा स्थितिं वा महेशि ॥ १२ ॥

लसत्तारहारामतिस्वच्छचेलां
वहन्तीं करे पुस्तकं चाक्षमालाम् ।
शरच्चन्द्रकोटिप्रभाभासुरां त्वां
सकृद्भावयन्भारतीवल्लभः स्यात् ॥ १३ ॥

समुद्यत्सहस्रार्कबिम्बाभवक्त्रां
स्वभासैव सिन्दूरिताजाण्डकोटिम् ।
धनुर्बाणपाशाङ्कुशान्धारयन्तीं
स्मरन्तः स्मरं वापि संमोहयेयुः ॥ १४ ॥

मणिस्यूतताटङ्कशोणास्यबिम्बां
हरित्पट्टवस्त्रां त्वगुल्लासिभूषाम् ।
हृदा भावयंस्तप्तहेमप्रभां त्वां
श्रियो नाशयत्यम्ब चाञ्चल्यभावम् ॥ १५ ॥

महामन्त्रराजान्तबीजं पराख्यं
स्वतो न्यस्तबिन्दु स्वयं न्यस्तहार्दम् ।
भवद्वक्त्रवक्षोजगुह्याभिधानं
स्वरूपं सकृद्भावयेत्स त्वमेव ॥ १६ ॥

तथान्ये विकल्पेषु निर्विण्णचित्ता-
स्तदेकं समाधाय बिन्दुत्रयं ते ।
परानन्दसंधानसिन्धौ निमग्नाः
पुनर्गर्भरन्ध्रं न पश्यन्ति धीराः ॥ १७ ॥

त्वदुन्मेषलीलानुबन्धाधिकारा-
न्विरिञ्च्यादिकांस्त्वद्गुणाम्भोधिबिन्दून् ।
भजन्तस्तितीर्षन्ति संसारसिन्धुं
शिवे तावकीना सुसंभावनेयम् ॥ १८ ॥

कदा वा भवत्पादपोतेन तूर्णं
भवाम्भोधिमुत्तीर्य पूर्णान्तरङ्गः ।
निमज्जन्तमेनं दुराशाविषाब्धौ
समालोक्य लोकं कथं पर्युदास्से ॥ १९ ॥

कदा वा हृषीकाणि साम्यं भजेयुः
कदा वा न शत्रुर्न मित्रं भवानि ।
कदा वा दुराशाविषूचीविलोपः
कदा वा मनो मे समूलं विनश्येत् ॥ २० ॥

नमोवाकमाशास्महे देवि युष्म-
त्पदाम्भोजयुग्माय तिग्माय गौरि ।
विरिञ्च्यादिभास्वत्किरीटप्रतोली-
प्रदीपायमानप्रभाभास्वराय ॥ २१ ॥

कचे चन्द्ररेखं कुचे तारहारं
करे स्वादुचापं शरे षट्पदौघम् ।
स्मरामि स्मरारेरभिप्रायमेकं
मदाघूर्णनेत्रं मदीयं निधानम् ॥ २२ ॥

शरेष्वेव नासा धनुष्वेव जिह्वा
जपापाटले लोचने ते स्वरूपे ।
त्वगेषा भवच्चन्द्रखण्डे श्रवो मे
गुणे ते मनोवृत्तिरम्ब त्वयि स्यात् ॥ २३ ॥

अथ

जन्मपत्रिका

